सिद्धार्थ मुख़र्जी कृत 'THE EMPEROR OF ALL MALADIES: A Biography of Cancer' के पचास पृष्ठों का हिन्दी अनुवाद और उसमें आने वाली समस्याएँ

HINDI TRANSLATION OF 50 PAGES OF SIDDHARTHA MUKHERJEE'S 'THE EMPEROR OF ALL MALADIES: A Biography of Cancer' AND ITS PROBLEMS

(एम. फिल. उपाधि हेतु लघु शोध–प्रबन्ध)

शोध निर्देशक
डॉ.चमन लाल

शोधार्थी
धीरज कुमार

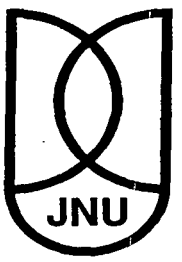

भाषा साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–110067

2013

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Language
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Langauge, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Date: 31/01/2013

DECLARATION

I hereby declare that the research work done in this M. Phil Dissertation entitled "SIDDHARTHA MUKHERJI KRIT 'THE EMPEROR OF ALL MALADIES: A BIOGRAPHY OF CANCER' KE 50 PRISHTHON KA HINDI ANUVAD AUR USMEN AANE WALI SAMASYAEN" (HINDI TRANSLATION OF 50 PAGES OF SIDDHARTHA MUKHERJEE'S 'THE EMPEROR OF ALL MALADIES: A BIOGRAPHY OF CANCER' AND ITS PROBLEMS) by me is the original research work and it has not been previously submitted for any other degree in this or any other university/ institution.

DHEERAJ KUMAR
(Research Scholar)

Prof. Chaman Lal
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

Prof. Rambux Jat
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

'समर्पण

सभी ज्ञात व

अज्ञात शहीदों

को'

अनुक्रम

विषय सूची	पृष्ठ संख्या
भूमिका	ii-v
अध्याय प्रथम	01–03
लेखक का व्यक्तित्व व कृतित्व	
अध्याय द्वितीय	04–77
पचास पृष्ठों का हिन्दी अनुवाद (लेखकीय वक्तव्य सहित)	
अध्याय तृतीय	78–96
हिन्दी अनुवाद के दौरान आने वाली समस्याएं	
अध्याय–चार	97–101
उपसंहार	
ग्रंथानुक्रमणिका	102–106

भूमिका

जब सामान्य श्रेणी के पुलित्ज़र पुरस्कार 2011 के लिए इम्परर आफ ऑल मलाडाईजः अ बायोग्राफी ऑफ कैंसर को चुना गया तो समस्त विश्व–समुदाय में इस पुस्तक की चर्चा आरंभ हुई। मैं भी इस लहर में शामिल था। इस पुस्तक की समीक्षा मैंने अपने कोर्स–वर्क के दौरान इंटरनेट पर पढ़ी। उस समय तक इस चीज का जरा सा भी अंदेशा नहीं था कि यह पुस्तक इस तरह भी आकर्षक लगेगी। मैंने इतिहास में विदेशी आक्रमणकारी डेरियस का नाम सुना था। जिसका हिंदी नाम दारा था। समीक्षा में दारा की पत्नी अटोसा का प्रकरण देखा इस कारण और परिचय की जिज्ञासा बढ़ी। समझने के बाद मैं चाहता था कि हिंदी भाषी समुदाय को इस अद्‌भुत रचना से अवगत कराया जाए। अतः एक बार फिर से अनुवाद को सेतु के रूप में लेना आवश्यक प्रतीत हुआ।

चूंकि मैं अनुवाद का विद्यार्थी था इसलिए मेरे पास तीन विकल्पों की उपलब्धता थी– या तो मैं भाषिक–सांस्कृतिक विश्लेषण करूं, सिद्धांत एवं व्यावहारिक पक्षों से संघर्ष करूं या किसी मौलिक कृति का अनुवाद करूं। एम.फिल के प्रारंभ में ही मैं एक ही नई ऊर्जा व ऊष्मा से संचालित हो रहा था इसलिए कुछ ऐसा करने की इच्छा थी कि मेरा शोध 'न भूतो न भविष्यति' वाला हो। इस पुस्तक को लेकर जब मैंने अपने आदरणीय गुरुवर प्रो. चमन लाल से चर्चा की तो उन्होंने सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी।

इंटरनेट पर मैंने पुलित्ज़र पुरस्कार प्राप्तकर्ताओं (सामान्य श्रेणी) की सूची में हिन्दुस्तानी नाम देखा तो इससे ज्ञात हुआ कि 1917 से प्रारंभ[1] इस श्रेणी में सिद्धार्थ–मुखर्जी पहले भारतीय मूल के हैं। इसके अलावा इस कृति को चुनने का कारण मेरी विज्ञान विषय में रुचि तथा इस विषय से पूर्व परिचय भी था। तीसरा और मुख्य कारण इस पुस्तक का विषय 'कैंसर' होना था। यह विडंबना ही कही

---

1 http://en.wikipedia.org/wiki/Pulitzer_Prize_for_General_Nonfiction [Online: web] Accessed on 20/07/2012.

जाएगी कि जिस प्रथम भारतीय को पुलित्ज़र पुरस्कार मिला (1937, पत्रकारिता में) उनकी मृत्यु का कारण भी कैंसर ही था। लेखक ने कैंसर की उसके समस्त फैलाव में जाकर छान–बीन की है। इसमें ईसा–पूर्व के प्रकरणों से लेकर वर्तमान तक के विभिन्न पहलू शामिल हैं। यह आपाधापी भरी जिंदगी से किस तरह से प्रभावित होता है, इसके प्राचीनतम रूप की क्या विशेषता थी, आदि बातें उक्त पुस्तक में सुलझाई गई हैं। यह पुस्तक उस वट–वृक्ष की तरह है जिसकी राजनीति, इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और निःसंदेह जीवविज्ञान रूपी कई शाखाएं व उपशाखाएं हैं। सभी का कैंसर से किस तरह संबंध है, यह भी इस पुस्तक की विशेषता है।

अनुवाद करने के दौरान लेखक के मस्तिष्क में होने वाली उथल–पुथल तथा पाठकों को सब कुछ बता देने की प्रबल इच्छा का पता चला। फलतः इस भाव को सुरक्षित रखने का यथासंभव प्रयास मैंने इस लघु–शोध–प्रबंध में किया है। मूलतः इसके तीन अध्याय है।

लघु–शोध प्रबंध के प्रथम अध्याय में लेखक के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। लेखक एक कुशल चिकित्सक, रक्त–संबंधी शोध वैज्ञानिक के अतिरिक्त लेखकीय प्रतिभा में भी पारंगत व्यक्ति हैं। डॉ. सिद्धार्थ मुखर्जी की यह पुस्तक उनकी व्यावसायिकता का प्रतिफल है।

दूसरे अध्याय में, उक्त पुस्तक के प्रथम पचास पृष्ठों का हिंदी अनुवाद किया गया है। साथ ही इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि पुस्तक के मूलभाव की रक्षा यथासंभव की जाए। चूंकि यह विज्ञान की पुस्तक है इसलिए अनुवाद में 'शैली' की अपेक्षा 'विषय' पर अधिक ध्यान की आवश्यकता महसूस होती रही है। इसलिए जहां अपनी तरफ से शब्द जोड़े हैं वहां भी मूल के निकटतम रहने का प्रयास किया है। इस अध्याय में लेखकीय वक्तव्य के एक पृष्ठ, आमुख के चार पृष्ठ सहित प्रथम पचास पृष्ठ शामिल हैं।

तीसरे अध्याय के अंतर्गत, पुस्तक के हिंदी अनुवाद के दौरान आने वाली समस्याओं का विवेचन किया गया है। यह अलग बात है कि कठिनाईयां अपेक्षा से अधिक आई थी। इस अध्याय में ही विज्ञान के शब्दों के परंपरागत अनुवादों के

अतिरिक्त कुछ नए शब्दों को विकल्प के तौर पर सुझाया है।

वस्तुतः इस पुस्तक में कैंसर केवल एक विकार न होकर उपनिवेशवादी घुसपैठिए के रूप में चित्रित है। इसका विषाणु मानव–शरीर की किसी कमजोर कोशिका में घुसकर उस कोशिका में अपना स्थान सुदृढ़ करके दूसरे उपनिवेश की तलाश में और मजबूत होकर निकल पड़ता है। पुस्तक में शायद ही कोई ऐसा पक्ष है जिसकी चर्चा लेखक ने न की हो। बहुत संभव है कि इसी कारण मुझे अनुवाद करने के दौरान एक बार लगा कि क्या ये सब मैं उसी तीव्रता के साथ हिंदी के पाठकों को स्थानांतरित कर पाऊंगा जिस तीव्रता के साथ डॉ. मुखर्जी ने अंग्रेजी के पाठकों को किया है। इस अवस्था में मुझे एम.फिल कोर्स–वर्क के दौरान डॉ. रणजीत साहा द्वारा दिए गए व्याख्यानों से सहारा मिला। इसके लिए मैं श्रद्धेय गुरुजी का ऋणी हूं।

अनुवाद करने के बाद उसको व्यवस्थित करने में मुझे इसका आभास हुआ कि हिंदी के चरित्र को ध्यान में रखते हुए मूल के कथ्य को सुरक्षित रखना कितना दुष्कर कार्य है? अपनी लेखकीय क्षमता की लघुता का ज्ञान इस लघु–शोध प्रबंध को आकार देते समय पता चला। लेखक के यू–ट्यूब पर देखे गए साक्षात्कार, व्याख्यान तथा अन्य फुटकर स्रोतों से प्राप्त जानकारी का उपयोग मैंने इसमें किया है। मेरे शोध–निर्देशक प्रो. चमन लाल, जिनका साफ–साफ कह देने के लहजे के कारण मैं उनके पास जाने से कतराता था, ने मुझे न्यूज़वीक मैंगजीन के लेख बुलाकर प्रदान किए। इन लेखों से मुझे डॉ. मुखर्जी को समझने में सहायता मिली। इसके अतिरिक्त आदरणीय गुरुदेव का जो संरक्षक तुल्य स्नेह, ज्ञान व प्रेरणा मिली वह मुझे चिरऋणी होने के लिए बाध्य कर देती है।

यह लघुशोध प्रबंध मैं अपनी पूज्य भां व स्वर्गीय पिताजी की स्मृतियों को तथा भईया–भाभी व दीदी को समर्पित करता हूं जिन्होंने यह क्षमता प्रदान की कि मैं काग़ज–कलम पकड़ सकूं।

अंत में, रश्मि को, अमित भाई साहब व अशोक सर जैसे सीनियरों कुंदन व संदीप जैसे अनुजवत, जूनियरों को धन्यवाद ज्ञापित करता हूं। मनोज, राहुल, शशी,

राजीव रंजन, पिंटू व दीपक को धन्यवाद देना ही पड़ेगा जिनमें से कुछ ने आकर और कुछ ने न आकर अपना अमूल्य सहयोग दिया।

अध्याय प्रथम

लेखक का व्यक्तित्व व कृतित्व

डॉ. मुखर्जी का जन्म 1970 में नई दिल्ली (भारत) में हुआ। इनके पिता सिवेश्वर मुखर्जी मित्सुविशी में कार्यरत थे तथा माता चंदना मुखर्जी एक रिटायर्ड शिक्षिका हैं। डॉ. मुखर्जी प्रारंभिक शिक्षा सेंट कोलंबस स्कूल, नई दिल्ली से लेने के बांद स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय, कैलीफोर्निया चले गए। वहां इन्होंने नोबेल पुरस्कार विजेता पॉल बर्ग की प्रयोगशाला में शोध किया तथा कोशकीय गुणसूत्र कैसे कैंसर कोशिका को प्रभावित करते हैं, को समझने मे मदद की। रोड्स छात्रवृत्ति प्राप्त करने के बाद प्रतिरक्षा विज्ञान में डी.फिल की उपाधि मैग्डेलन कॉलेज, ऑक्सफोर्ड से प्राप्त की तत्पश्चात हार्वड मेडिकल स्कूल से डॉक्टर ऑफ मेडिसन की उपाधि ली। मुखर्जी की पत्नी सारा कलाकार हैं तथा इनकी दो पुत्रियां लीला व आरिया है।[1]

सिद्धार्थ मुखर्जी भारतीय–अमेरिकी चिकित्सक वैज्ञानिक व लेखक हैं। इनकी पुस्तक को वार्षिक रूप से दिया जाने वाला पुलित्ज़र पुरस्कार 2011 कथेटर साहित्य की श्रेणी में प्रदान किया गया। ये भारतीय अथवा भारतीय मूल के अभी तक के पहले व अंतिम लेखक हैं जिन्हें इस श्रेणी में पुरस्कार मिला। हालांकि पुलित्ज़र प्राप्तकर्ताओं की सूची में इनका स्थान गोविंद बिहारी लाल (1937– पत्रकारिता), झुम्पा लाहिरी (2000– कथा साहित्य), गीता आनंद (2003) के बाद चौथा है।[2] 'लेखक' सिद्धार्थ मुखर्जी का पेशा दस साल पुराना है। इस दस साल पुराने कॅरियर में मुखर्जी ने कई लेख लिखे, परंतु इनकी कीर्ति का आधार 2010 में आई इनकी पुस्तक "इम्परर ऑफ ऑल मलाडाईस : अ बॉयोग्राफी ऑफ कैंसर" है। यह पुस्तक 16 नवम्बर 2010 को स्क्रिबनर प्रकाशन, न्यूयॉर्क, अमेरिका से प्रकाशित हुई। मूलतः अंग्रेजी में लिखित इस पुस्तक में 592 पृष्ठ हैं।

---

1 http://www.npr.org/2010/11/17/131382460/an-oncologist-writes-a-biography-of-cancer

2 http://www.rediff.com/news/slide-show/slide-show-1-siddhartha-mukherjee-the-4th-indian-origin-pulitzer-winner/20110420.htm#1

डॉक्टर मुखर्जी को अपने स्नातकोत्तर के दौरान ही कैंसर विज्ञान में छात्रवृत्ति प्राप्त हुई तथा ये अनुभव के लिए मैसाच्यूसेट्स जनरल हॉस्पिटल में दो साल रहे। इस बीच इनको कई प्रकार के कैंसर मरीजों का सामना करना पड़ा, जिनमें से इनकी पुस्तक में उल्लिखित कार्ला नामक महिला का प्रकरण है जो ल्यूकेमिया से ग्रस्त थी। प्रशिक्षु डॉक्टर होने के नाते इनके कई मरीजों की मृत्यु भी हो चुकी थी। इस कारण ये एक बार बहुत विचलित हो गए तथा पश्चाताप स्वरूप कार पार्किंग में जाकर अफसोस भी प्रकट किया। डॉक्टर मुखर्जी वर्तमान में न्यूयॉर्क सिटी के कोलंबिया यूनीवर्सिटी में कैंसर विभाग में असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं।

2011 में इनकी पुस्तक को द न्यूयॉर्क टाइम्स[3] ने 2010 की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में रखा तथा 'टाईम' पत्रिका ने इसको "टॉप टेन नोटिफिकेशन बुक्स" में रखा[4] 2011 में ही यह पुस्तक 'नेशनल बुक सर्कल किटिक अवार्ड' के लिए नामंकित हुई तथा अंतिम चरण तक पहुंची। टाईम पत्रिका ने इनके रचनाकर्म को महत्व देते हुए डॉ. मुखर्जी को "100 सबसे ज्यादा प्रभावशाली लोगों की सूची" में जगह प्रदान की तथा इनकी पुस्तक को 1923 के बाद की सर्वश्रेष्ठ 100 कथेतर किताबों में समावेशन के लिए स्थान दिया।

एक रक्त विज्ञानी तथा कैंसर विज्ञानी के रूप में प्रशिक्षण प्राप्त डॉ. मुखर्जी के वैज्ञानिक कर्मों के कारण सामान्य कोशिका तथा कैंसर कोशिका की कड़ी का पता चला। डॉ. मुखर्जी की प्रयोगशाला कोलंबिया विश्वविद्यालय के इरविंग कैंसर रिसर्च सेंटर में स्थित है। इससे पहले वे बोस्टन के मैसाच्यूसेट्स जनरल हॉस्पिटल तथा हार्वड स्टेम सेल इंस्टीट्यूट के साथ संबद्ध थे।

---

[3] " http://www.oprah.com/book/The-Emperor-of-All-Maladies-A-Biography-of-Cancer-by-Siddhartha-Mukherjee?cat_id=

[4] http://www.time.com/time/specials/packages/article/0,28804,2035319_2034029_2034019,00.html

अध्याय द्वितीय

पचास पृष्ठों का हिन्दी अनुवाद

(लेखकीय वक्तव्य सहित)

2010 में 6 लाख अमेरिकी तथा सत्तर लाख समस्त दुनिया के मानव, कैंसर से मरेंगे। अमेरिका में तीन औरतों में से एक औरत और दो में से एक आदमी अपनी जिंदगी में कैंसर से ग्रसित हो जाएंगे। अमेरिका में होने वाली मौतों का 1/4 तथा विश्व में होने वाली मौतों के लगभग 15 प्रतिशत का श्रेय कैंसर को जाएगा। कुछ राष्ट्रों में कैंसर से होने वाली मौतें हृदय रोगों से होने वाली मौतों को मात दे देंगी।

यह पुस्तक कैंसर का इतिहास है। यह क्रमबद्ध इतिहास है, एक पुरानी बीमारी का ,जिसके बारे में सार्वजनिक रूप से बात नहीं की जाती थी। एक ऐसी बीमारी – जो प्राणघातक आकार में परिवर्तित हो चुकी है इन सब बातों के अलावा कैंसर आज हमारी पीढ़ी के लिए महामारी के रूप में जाना जाता है जिसकी वजह इसका लाक्षणिक होने के अलावा चिकित्सकीय, वैज्ञानिक तथा राजनीतिक रूप से प्रबल होना है। यह पुस्तक वास्तविक अर्थों में एक 'जीवनी' है – कि इसमें एक शाश्वत व्यक्ति के 'दिमाग' में प्रवेश करने, उसके व्यक्तित्व को समझने तथा उसके रहस्यमयी व्यवहार से पर्दा उठाने का प्रयास किया गया है। लेकिन इस जीवनी से परे मेरा एक चरम लक्ष्य है, यह प्रश्न खड़ा करना कि भविष्य में हम कैंसर का अंत कर सकेगे ? क्या इस व्याधि का उन्मूलन अपने शरीर और समाज से हमेशा के लिए कर पाएंगे ?

कैंसर एक नहीं अनेक बीमारियों का समूह है। हम इन सभी को 'कैंसर' कह सकते हैं क्योंकि ये सभी बीमारियां एक आधारभूत लक्षण रखती हैं वह है – कोशिकाओं की असामान्य वृद्धि। जैविक समानता के अतिरिक्त, इसमें गहरी सांस्कृतिक व राजनीतिक अंतर्वस्तु भी है जो कैंसर के विभिन्न रूपों में से गुजरती है। यह कैंसरों के वर्णन को एकीकृत करती है। कैंसर के सभी प्रकारों पर गौर करना संभव नहीं है फिर भी मैंने इसके 4000 साल के इतिहास की मुख्य अंतर्वस्तुओं को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

यह परियोजना विस्तृत है तथा अधिक कठिन नहीं थी। 2003 की गर्मियों में चिकित्सा विज्ञान और कैंसर प्रतिरक्षा में स्नातक पूरा करने के बाद मैंने औषधीय कर्क रोग विज्ञान में और आगे का प्रशिक्षण डाना फार्बर कैंसर संस्थान तथा मैसाचुसेट्स जनरल अस्पताल बोस्टन में लेना शुरू किया। मैं पहले ही उस साल एक ऐसी लघु पत्रिका लिखने के बारे में सोच रहा था जिसमें कैंसर के इलाज से संबंधित विभिन्न पक्ष हों। लेकिन जल्दी ही मेरी यह कामना एक विशाल अन्वेषी यात्रा में बदल गयी। इस यात्रा के दौरान मैं काफी गहराईयों में गया। ये गहराईयां कैंसर के अतीत और भविष्य में विज्ञान और

चिकित्सा से संबधित थी साथ ही उसकी संस्कृति, इतिहास, साहित्य तथा राजनीति से भी जुड़ी हुई थी।

इस कहानी के केन्द्र में दो चरित्र हैं – दोनों समकालीन एवं आदर्शवादी हैं, अमेरिका के युद्धोत्तर काल की विकसित तकनीकि और विज्ञान की संतान हैं। और दोनों ही कैंसर के खिलाफ एक 'राष्ट्रीय युद्ध' घोषित करने के लिए व्याकुल हो गए थे। इनमें से पहले है –आधुनिक कीमोथेरेपी के पिता सिडनी फार्बर। इन्होंने अकस्मात ही विटामिन के समूह मे एक शक्तिशाली कैंसर प्रतिरोधक की खोज की तथा कैंसर के सार्वभौमिक इलाज का सपना देखा। दूसरा चरित्र हैं– मेरी लास्कर। ये मैनहट्टन की उच्चवर्गीय सामाजिक और राजनीतिक रूप से जागरूक महिला थीं। इन्होंने फार्बर की दशकों लंबी यात्रा में साथ दिया। लेकिन लास्कर तथा फार्बर ने 4000 हजार साल से कैंसर से जूझ रहे स्त्रियों और पुरुषों को केवल सकारात्मक दृढ़ता, खोजशीलता तथा आशावादिता का द्रष्टांत दिया। एक अर्थ में यह सैन्य इतिहास है जिसमें शत्रु आकारहीन, शाश्वत तथा हर तरफ शीघ्रता से व्यापक होने वाला है। यहां भी जीत और हार है, अभियान के बाद अभियान है, हीरो तथा विलेन है, कष्ट और उससे उबरने की ताकत है तथा निःसंदेह रूप से इसमें जख़्मी, अभिशप्त विस्मृत किये हुए तथा मृत भी हैं। अंत में जैसा कि 19वीं सदी में, एक शल्य चिकित्सक (जर्राह) ने अपनी पुस्तक के मुखपृष्ठ पर लिखा है" सभी बीमारियों का बादशाह, आतंक का राजा", कैंसर हू–ब–हू उभरता है।

एक उद्घोषणाः विज्ञान और चिकित्सा में जहां खोज सबसे महत्त्वपूर्ण होती है, वहीं खोजकर्ता की महत्ता वैज्ञानिकों और अन्वेषकों के समूह द्वारा नियत होती है। यद्यपि इस किताब में खोज और आविष्कार की कई कहानियां हैं लेकिन इनमें से कोई भी वैधानिक रूप से सर्वोच्चता का दावा नहीं कर सकती।

इस पुस्तक में किया गया काम अन्य किताबों, अध्ययनों, पत्रिकाओं, वृत्तांतों और साक्षात्कारों की देन है। इसमें वृहद योगदान विशेंष व्यक्तियों, पुस्तकालयों,

संकलनों, अभिलेखों तथा पत्रों का भी है जिनको अभिस्वीकृति पुस्तक के अन्त में दी गई है।

एक अभिस्वीकृति अंतिम पृष्ठों के लायक नहीं है। वह यह कि यह पुस्तक केवल कैंसर के अतीत का सफर नहीं है, बल्कि मेरे एक कैंसर विशेषज्ञ होने की व्यक्तिगत यात्रा भी है। दूसरी यात्रा उन मरीजों के बिना असंभव है जिनकी बराबरी कोई भी योगदान नहीं कर सकता तथा जिन्होंने मुझे प्रेरणा देकर हतोत्साहित नहीं होने दिया। यह किताब उनकी हमेशा कर्ज़दार रहेगी।

यह कर्ज कुछ बाकी है। इस किताब की कहानियां इन मरीजों की निजता और गरिमा बनाए रखने के लिए एक महत्त्वपूर्ण चुनौती है। जिन प्रकरणों में बीमारी पहले ही सार्वजनिक रूप से प्रकट है (साक्षात्कार अथवा लेखों द्वारा) तथा जहां ऐसा नहीं है या मरीज ने आग्रह किया है वहां बनावटी नाम दिए हैं तथा जानबूझकर काल्पनिक पहचान बनाई है जिसे आसानी से पहचाना न जा सके। जो भी है, ये वास्तविक मरीज है जिनसे वास्तव में साबका पड़ा है। मैं अपने सभी पाठकों से निवेदन करूँगा कि वे इनकी पहचान तथा सीमाओं का ध्यान रखें।

'बीमारियों

का

बादशाह'

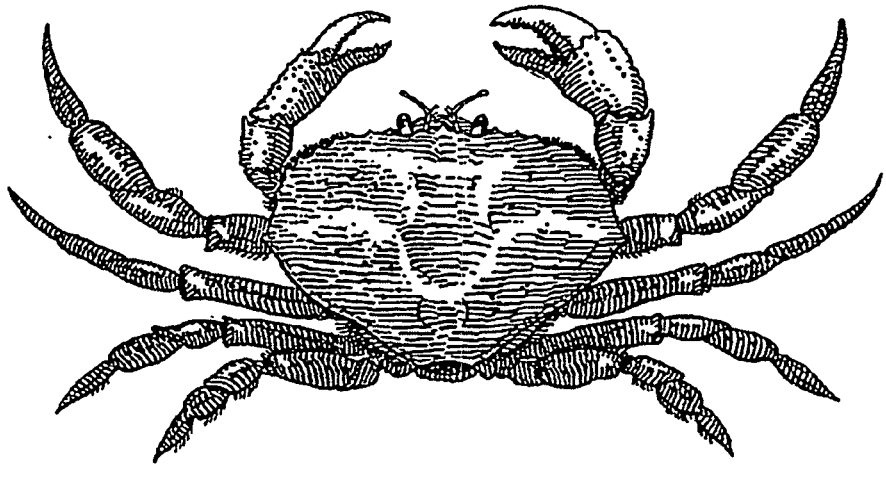

कर्करोग: एक जीवनी

आमुख

बीमारियां दुस्साहसपूर्वक बढ़ती है,

दुस्साहसपूर्ण औजारों से ही इनका उन्मूलन संभव है

अथवा बिल्कुल नहीं,

– विलियम शेक्सपीयर,

हेमलेट

कैंसर लोगों के साथ शुरू तथा खत्म होता है। वैज्ञानिक अमूर्तता के बीच, एक विशेष समय में हम यह आधारभूत तथ्य भूल जाते हैं ...चिकित्सक बीमारी का इलाज करते हैं, साथ ही मनुष्य का भी और उनके व्यावसायिक असतित्व की यह पूर्वशर्त उनको कई बार दो दिशाओं में ले जाती है।

–जून गुडफील्ड

19 मई 2004 की सुबह इप्सविच मेसाचुसेट्स में 30 साल की नर्सरी की शिक्षिका कार्ला रीड, जो तीन बच्चों की मां है, अपनी आंखें खोलते ही सरदर्द महसूस करती है। "केवल सरदर्द नहीं था" बाद में वह याद करती है, "कुछ हद मेरा सर सुन्न हो गया था"। इस प्रकार की सुन्नता बताती है कि कुछ भयानक होने वाला है।

यह भयानक चीज कुछ महीनों पहले ही हो चुकी थी। अप्रैल के आखिरी में कार्ला ने अपनी पीठ पर खरोंच जैसे निशान देखे। एक सुबह से अचानक ही दिखने लगे थे। ये निशान अजीब तरह के नाखून से खुरचने जैसे थे जो एक महीने के अंदर एक बड़े नक्शे के आकार के हो गए। यह समझ से परे था कि उसके मसूढ़ों का रंग सफेद पड़ने लगा था। शुरूआती मई के दिनों में, एक जिंदादिल तथा ऊर्जा से भरपूर नारी जो हमेशा 5–6 साल के बच्चों के साथ व्यस्त रहती थी, मई के आरंभिक दिनों में केवल दो सीढ़ियां चढ़ पा रही थीं। कई सुबह भारी थकान और खड़े होने में असमर्थ होकर वह एक कमरे से दूसरे कमरे में घुटनों तथा हाथों के बल सरकती हुई जाती थी। वह एक दिन में कुल मिलाकर 12–14 घंटे सोती थी इसके बावजूद जगने पर अपने आपको जबर्दस्त थका हुआ पाकर वह अपने शरीर को पुनः सोने के लिए घसीटकर बिस्तर पर ले जाती थी।

उन चार सप्ताहों में कार्ला और उसका पति सामान्य डॉक्टर के पास दो बार गए। लेकिन उनका डॉक्टर रोग की पहचान नहीं कर पाया। भयानक दर्द उसकी हड्डियों में डूबता उतरता रहा। डॉक्टर कुछ समझ नहीं पा रहा था। उसने कार्ला को कुछ एस्पिरिन लेने की सलाह दी क्योंकि वह इसे माइग्रेन समझ रहा था। एस्पिरिन ने कार्ला की हालत बदतर कर दी तथा उसके सफेद हो चुके मसूढ़ों से खून आने लगा।

मिलनसार, हंसमुख और प्रफुल्लित रहने वाली कार्ला अपनी बढ़ती हुई बीमारी से चिंतित कम हैरान ज्यादा थी। इससे पहले वह कभी गंभीर रूप से बीमार नहीं पड़ी थी। अस्पताल उसके लिए एक अमूर्त सी जगह थी, यहां तक कि वह कभी किसी डॉक्टर से मिलने या सलाह लेने नहीं गई थी, किसी कैंसर विशेषज्ञ की तो बात ही छोड़ दीजिए। वह अपने शरीर में उभरते लक्षणों को लेकर कई कारणों की कल्पना करती थी इनमें क्षमता से अधिक काम, दबाव, अपच, दिमागी फितूर या फिर अनिद्रा जैसे कारणों को समझती थी। आखिरकार उसके शरीर के अंदर से कुछ असामान्य चीज उभरी। यह सातवीं

इंद्रिय थी जिसने कार्ला को बताया कि कोई गंभीर व विनाशकारी चीज उसके अंदर आकार ले रही है।

19 मई की दोपहर में कार्ला ने अपने तीनों बच्चे पड़ोसी के यहां छोड़े तथा खुद गाड़ी चलाकर वापस अस्पताल अपना रक्त परीक्षण कराने गई। उसके डॉ. ने उसको नियमित रक्त गणना (रुधिर कणिकाओं) की सलाह दी। जैसे ही परीक्षण के लिए पैथॉलाजिस्ट ने उसका खून परखनली में लिया तो वह खून का रंग करीब से देखने लगा। वास्तव में खून का रंग अजीब सा था। पानी जैसा, कुछ–कुछ पीला तथा पतला द्रव जैसा यह पदार्थ जो कार्ला के शरीर से लिया गया था, शायद ही खून जैसा था।

कार्ला ने बाकी दिन बिना किसी समाचार के गुज़ार दिया। दूसरे दिन जब वह मछली बाजार में थी तो उसे एक फोन आया। क्लीनिक की नर्स बोली "हमें कुछ और खून चाहिए" अपने व्यस्त दिन को ध्यान में रखकर कार्ला ने पूछा, "मैं कब आऊँ?" कार्ला वैसे भी समय का ध्यान रखती है। उस समय उसके झोले में पड़ा सालमन मछली का आधा पाउंड का टुकड़े के खराब हो जाने का अंदेशा भी था जो काफी समय से प्रशीतक से बाहर था।

अंततः ये साधारण तथा विशिष्ट बातें कार्ला की बीमारी की यादों को आकार देती है : घड़ी, कार शेयर करना, बच्चे, परखनली का पीला खून, झोले में पड़ी मछली, तथा फोन पर आने वाली तंग आवाज। कार्ला से जो नर्स ने कहा उसमें से कार्ला सिवाय 'तुरंत आओ" के ज्यादा याद नहीं रख सकी। वह महसूस करती है कि नर्स ने केवल कहा "तुरंत आओ"।

---

21 मई को सुबह सात बजे मुझे कार्ला प्रकरण की जानकारी मिली। इस समय मैं कैंडल स्क्वायर और चार्ल्स स्ट्रीट (बोस्टन में) के बीच चलने वाली ट्रेन में था। कार्ला का संदेश जो मेरे बीपर पर झलक रहा था वह वास्तव में एक

मेडिकल आपात का भाव लिए हुआ था : 'मैं कार्ला रीड हूं। ल्यूकोमिया की नई मरीज। 14वीं मंजिल कृपया जल्दी से जल्दी पहुंचे।' जब ट्रेन एक लंबी अंधेरी सुरंग से बाहर आई तो मेरे सामने मैसाचुसेट्स अस्पताल की शीशे से बनी इमारत का दृश्य था तथा मैं इसकी 14वीं मंजिल के कमरों की खिड़की को देख रहा था।

मैंने सोचा, कार्ला हर तरह से तन्हा इन कमरों के पास बैठी होगी। कमरे के बाहर किसी को भी व्यग्र कर देने वाली मिली–जुली अजनबी आवाजें आना शुरू हो चुकी होगी। द्वितीय तल पर परीक्षण के लिए लाया गया रक्त प्रयोगशाला तथा वार्ड के बीच नियमित आ जा रहा होगा। नर्सें नमूनों को लेकर गतिमान होगी, सुबह के विवरणों से आंकड़ों को व्यवस्थित कर रही होगी, अलार्म बज रहे होंगे तथा पेज भेजे जा रहे होंगे। अस्पताल में कहीं पर सूक्ष्मदर्शी के लाइट टिमटमाने के साथ ही कार्ला के रक्त की कोशिकाएं इस लेंस से साफ दिख रही होगी।

मैं ऐसा इसलिए कह सकता हूं क्योंकि घातक ल्यूकेमिया के मरीज का आना अस्पताल के लिए उथल–पुथल कर देने वाला होता है। इसके ऊपरी माले पर स्थित कैंसर वार्ड से लेकर लैब तक के सारे रास्ते, जैसे तहखाने में दफन हो जाते हैं। ल्यूकोमिया सफेद रक्त कोशिकाओं का कैंसर होता है– कैंसर इनका एक बहुत बुरा तथा उग्र अवतार है। जैसा कि कैंसर के वार्ड की एक नर्स अपने मरीजों को याद दिलाती हुई कहती है, इस बीमारी में "एक कागज को फाड़ना भी आपातकाल होता है।"

एक कैंसर विशेषज्ञ को भी उसकी ट्रेनिंग में ल्यूकेमिया को कैंसर के विशिष्ट अवतार के रूप में साधना सिखाया जाता है। इसकी तेजी, इसकी मारक क्षमता तथा गजब की तीव्रता बहुधा चकित कर देने वाले परिणाम देती है; यह भयावह अनुभव है, इसका पता लगाना विचलित करने वाला है तथा इसका उपचार करना एक मानसिक आतंक है। जिस शरीर में ल्यूकेमिया घुस जाता है वह भौतिक रूप से अत्यंत ही भुरभुरा हो जाता है प्रत्येक तंत्र, हृदय, फेफड़े, रक्त आदि काम बंद करने की सरहद पर पहुंच जाते हैं। आगे नर्स ने मुझे और

जानकारी देकर विचार स्पष्ट किया। कार्ला के डॉक्टर के द्वारा किए गए रक्त परीक्षण में लाल कणिकाओं की संख्या खतरनाक ढंग से कम थी लगभग सामान्य की 1/3 से भी कम। सामान्य सफेद कणिका के बजाए उसका रक्त लाखों बडी तथा दूषित सफेद कणिकाओं की गठरी बन गया था। कैंसर की शब्दावली में इस स्थिति को 'विस्फोट'[5] कहा जाता है। आश्चर्यजनक रूप से ही सही कार्ला के डॉक्टर ने रोग की पहचान कर ली तथा उसे मेसाचुसेट्स जनरल हॉस्पिटल भेज दिया।

अंततः कार्ला के कमरे के बाहर वाले एक बड़े तथा लगभग खाली हॉल में जिसमें कि रोगाणुरोधी चमक अभी–अभी ब्लीच (विरंजक) लगे पोछे से आ गई थी, मैंने परीक्षणों की सूची देखी। यह उसके रक्त परीक्षण के लिए जरूरी थी तथा मैने मन ही मन अपने को कार्ला से बातचीत के लिए तैयार किया। वहां पर मैंने एक चीज यह ध्यान दी कि कार्ला के बारे में सोचना बनावटी था यहां तक मेरी सहानुभूति भी कृत्रिम थी। यह मेरी कैंसर विशेषज्ञता की 'फेलोशिप' (अध्येतावृत्ति) का दसवां महीना था (यह दो साल का गहन चिकित्सकीय कार्यक्रम कैंसर विशेषज्ञों को प्रशिक्षित करने के लिए था) मैंने यह अनुभव किया कि कोई चीज मुझे नैतिक रूप से कमजोर कर रही है। इस फेलोशिप के दस महीने मेरे लिए हृदय विदारक थे क्योंकि मेरी देखरेख में दर्जनों मरीज मर चुके थे। मुझे लगने लगा कि मैं मृत्यु तथा ध्वंस के प्रति हृदयहीन होता जा रहा हूं तथा यह भी लगा कि इन लगातार मिलने वाले हृदय विदारक झटकों के प्रति मेरे अंदर प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो गई है।

इस प्रकार से हम सात कैंसर विशेषज्ञ इस अस्पताल में थे। ऊपर से देखने पर हम एक अपराजेय शक्ति की तरह लगते थे– पांच चिकित्सा

---

[5] दो तरह के ब्लास्ट हैं –सामान्य तथा लिम्फो ब्लास्ट, सामान्य में 5 प्रतिशत कणिकाएं ब्लास्ट होकर सफेद रूधिर कणिका बनाती है, जबकि ल्यूकोमिक ब्लास्ट में ब्लास्ट के बाद भी वे अपरिपक्व ही रह जाती है तथा परिपक्व सफेद रुधिर कणिका की तरह काम नहीं करती।

विद्यालयों[6], चार शिक्षण अस्पताल[7] से स्नातक, छियासठ साल का चिकित्सकीय तथा वैज्ञानिक प्रशिक्षण और 12 परास्नातक उपाधियां हमारे पास थीं। लेकिन ये सब उपाधियां और वर्ष शायद ही इस प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए हमें तैयार कर पाए। चिकित्सा विद्यालय, इंटर्नशिप और रेजीडेंसी[8] शारीरिक तथा मानसिक रूप से थकाऊ बना चुकी थी। लेकिन फेलोशिप के पहले महीने ने उन सारी यादों को हवा में उड़ा दिया जैसा कि ये चिकित्सकीय परीक्षण बच्चों के खेल हो या बचपना हो।

हम कैंसर को अपनी जिंदगी का पूरा समय देते थे। यह हमारी कल्पनाओं में था, इसने हमारी स्मृतियों पर कब्जा कर लिया था और हमारे प्रत्येक आचार–विचार में धीरे–धीरे घुल चुका था। यदि हम एक चिकित्सक (फिजीशियन) होने के नाते कैंसर में डूबे हुए थे तो हमारे मरीज अपना जीवन इस बीमारी के हाथों छिनता हुआ देख रहे थे। अलेक्जेंडर सोल्झीनित्सिन के उपन्यास 'कैंसर वार्ड' में पॉवेल निकोलेविच रूसानोव अधेड़ उम्र का रूसी नौजवान, पाता है कि उसकी गर्दन में एक ट्यूमर (गांठ) है, यह पता लगते ही वह सुदूर उत्तर दिशा के एक ठंडे स्थान में स्थित एक गुमनाम से अस्पताल के कैंसर वार्ड में भर्ती हो जाता है। कैंसर का पता लगना बीमारी नहीं है लेकिन इसके साथ जो विचार जुड़ा होता है वह रूसानोव के लिए मृत्युदंड बन जाता है। इस बीमारी ने उसकी व्यक्तिगत पहचान मिटा दी। इस बीमारी ने उसे 'स्मॉक'[9] पहनने पर मजबूर कर दिया था। इसको पहनकर न वह हंस पाता था न रो पाता था ये किसी कैदी के 'जंपसूट'[10] से कम अभिशापित नहीं था तथा इसने उसकी सारी सक्रियता को नियंत्रित कर लिया था। रूसानोव को कैंसर

---

[6] Where student study to obtain a degree in medicine

[7] In Britain as well as having medical student, they also have some of best doctors and equipments in the country.

[8] A period of time when a doctor working in a hospital receives special advance training.

[9] एक विशेष कोट जिसे कपड़ों को बचाने के लिए पेंटर आदि पहनते है।

[10] एक ही में सिला गया शर्ट व पाजामा।

का पता लगना एक अंतहीन 'गुलग'[11] में प्रवेश करना था। यह स्थिति ज्यादा ध्वंसकारी है उस स्थिति की तुलना में जिससे वह गुजर चुका है सोल्झेनेत्सिन ने शायद सर्वसत्तावादी कैंसर अस्पताल के समांतर सर्वसत्तावादी निरंकुश राज्य को रखा है। हालांकि जब मैंने एक सर्वाइकल कैंसर से पीड़ित महिला से कैंसर के अनुभव के बारे में पूछा तो उसने भुक्त भोगी की तीव्रता में कहा "दुर्भाग्य से मुझे इस किताब के लिए कोई रूपक जरूरत नहीं है। कैंसर वार्ड (अस्पताल) में मैं बंधक की तरह थी। जो कि वास्तव में पीड़ितों के लिए अब भी है। चूंकि मैं कैंसर मरीजों का डॉक्टर होने की प्रक्रिया में था अतः इस अवस्था का थोड़ा सा भान था। लेकिन डॉक्टरी की परिधि पर होने के नाते मैं कैंसर की शक्ति तथा इसके घनीभूत और खतरनाक गुरुत्वाकर्षण को महसूस करने में सक्षम था जो कि प्रत्येक वस्तु तथा व्यक्ति को अपने घेरे में एक झटके से खींच लेता है। मेरा एक सहकर्मी जिसने जल्दी ही अपनी फेलोशिप पूरी की थी, मुझे एक ओर ले जाकर सलाह दी "ये एक डूब जाने वाल ट्रेनिंग प्रोग्राम (प्रशिक्षण कार्यक्रम) हैं" तथा धीरे से बोला "डूबने से इन लोगों का मतलब वास्तव में डुबाकर मारने से है। अपने सारे काम इनके हिसाब से मत करो। अस्पताल के बाहर भी दुनिया है। और तुमको इसकी आवश्यकता भी है अन्यथा तुमको ये निगल लेगा।"

लेकिन इसमें आकर डूब जाना स्वाभाविक था। अस्पताल की पार्किंग में, जहां नियॉन बल्ब की तेज रोशनी थी, मैंने अपनी कई शामें अजीब तरह की उथल–पुथल में बिताई। पीछे कार में संगीत बज रहा था यह मुझ पर कोई प्रभाव नहीं डाल रहा था क्योंकि मैं मेरे साथ दिन में घटी घटनाओं से ध्यान नहीं हटा पा रहा था। मेरे मरीजों की समस्याएं मेरी सारी ऊर्जा ले चुकी थी और जो निर्णय मैंने लिए वे मुझे चिंता में डुबो गए। *"66 साल का दवा विक्रेता जिसको फेफड़े का कैंसर है उसके लिए अन्य सारी दवाएं बेकार सिद्ध हो चुकी हैं। इसकी एक और कीमोथेरेपी करना क्या सार्थक होगा? क्या*

[11] सोवियत यूनियन का यातना शिविर

'हॉजकिंस बीमारी'[12] से पीड़ित 26 साल की महिला के लिए सफल तथा शक्तिशाली दवाएं देना ज्यादा उचित था? अथवा मुझे और दवाओं का मिश्रण देना था जो शायद उसे ठीक कर देता। तीन बच्चों की मां को जो मलाशय के कैंसर से ग्रसित थी केवल स्पेनिश समझ सकती थी। जब वह बड़ी मुश्किल से अपने सहमति पत्र को पढ़ रही थी तब ठीक उसी समय मुझे एक नए चिकित्सकीय प्रयोग के लिए ले लेना चाहिए था?

दिन–प्रतिदिन कैंसर को व्यवस्थित करने में मैं केवल अपने मरीजों की जीवन तथा मृत्यु को देख पाया जो कि अपने पूरे रंग में थे उसी तरह से जैसे किसी टीवी के उच्च कंट्रास्ट में रंग होते हैं। मैं उस जगह से हट नहीं सका। स्वभावतः मैं जानता था कि इस तरह के अनुभव कैंसर के खिलाफ एक बड़ी लड़ाई का हिस्सा थे लेकिन इसकी परिरेखा मेरी पहुंच के बाहर थी। मेरी हालत नौसिखिया की तरह थी जो अतीत से सीखना चाहता था और भविष्य को देखने में असमर्थ था।

लेकिन मैं जब अपनी फेलोशिप के दो अजीब से उबाऊ सालों से मुक्ति पा गया, कैंसर की विशाल कहानी से जुड़े प्रश्न महत्वपूर्ण बन गए। जैसे कि कैंसर कितना पुराना है? हमारी कैंसर के खिलाफ लड़ाई कितनी गंभीर है? अथवा जैसा कि मेरे मरीज प्रायः पूछते थे कि कैंसर से इस लड़ाई में हम कहां हैं? कैसे हम यहां तक आ गए? क्या इसका कोई अंत है? क्या यह लड़ाई जीती भी जा सकती है?

यह किताब इन सवालों के उत्तर देने का प्रयास है। मैंने कैंसर के अतीत

---

[12] *लिम्फोमा, सफेद कणिका का कैंसर जिसे हॉजकिंस ने 1832 में खोजा,* Source: http://www.cancer.org/cancer/hodgkindisease/overviewguide/hodgkin-disease-overview-what-is-hodgkin-disease

को टटोलने का प्रयास किया है जिससे कि मैं उस बीमारी का आकार सुनिश्चित कर सकूं जो जीवन के आकार को डांवाडोल करती हैं मैंने वर्तमान को स्पष्ट करने के लिए अतीत का प्रयोग किया है। एक 36 वर्षीय महिला जो स्तन कैंसर के तीसरे चरण में थी उसका अलगाव तथा उससे उपजा गुस्सा पुराने जमाने की अटोसा से समानता रखता था। अटोसा एक फारस की महारानी थी जिसने अपने संक्रमित स्तन को छिपाने के लिए कपड़े से बांधा तथा शून्यवादियों और पूर्वबोध से ग्रसित होकर स्तन को चाकू से काट दिया। किसी मरीज की यह इच्छा कि उसका कैंसर से ग्रसित भाग काट दिया जाए "कुछ कम नहीं हुआ" जैसा भाव रखता है, ऐसा उसने मुझसे कहा। यह भाव मुझे 19वीं सदी के शल्य चिकित्सक विलियम हॉल्सटेड की याद दिलाता है जिनपर पूर्ण रूप से सही करने को लेकर सनक सवार रहती थी। इन्होंने यह सोचकर कई लोगों को बेडौल बना दिया (जैसे वसूले से लकड़ी को काटने पर होता है) कि जितना अधिक ऑपरेशन करेंगे उसी अनुपात में मरीज ठीक होगा।

कैंसर से जुड़ी इस चिकित्सीय, सांस्कृतिक तथा लाक्षणिक बाधाओं का आधार केवल बीमारी की 'जैविक समझ' सदियों तक काम करती रही। एक दशक से दूसरे दशक तक यह समझ प्रायः बदलती रही। जबकि आज हम जानते हैं कि यह किसी एक कोशिका की अनियंत्रित वृद्धि होना है। यह वृद्धि म्यूटेशन (परिवर्तन) द्वारा होती है इसमें डीएनए में परिवर्तन होता है जिससे विशेषतः जीन्स प्रभावित होते हैं जिसकी वजह से कोशिका की अनियंत्रित वृद्धि होती है। एक सामान्य कोशिका में जेनेटिक परिपथ कोशिका विभाजन तथा कोशिका की मृत्यु को नियंत्रित करता है। जबकि कैंसर कोशिका में यह परिपथ टूट जाता है जिससे कोशिका उत्तेजित होकर अनियंत्रित तरीके से बढ़ती है।

इस तरह कोशिका की अनियंत्रित वृद्धि इस विलक्षण बीमारी का केंद्र प्रतीत होती है और यह बेतुकी और बहुआयामी बीमारी कोशिका वृद्धि की अगाध शक्ति का प्रमाण है। कोशिका विभाजन की वजह से हमारा अंगतंत्र वृद्धि, अनुकूलन, मरम्मत आदि करता है जिससे हम जिंदा रहते हैं। इस कोशिका का

विकृत रूप यदि शुरू होता है तो कैंसर कोशिका की वृद्धि, अनुकूलन तथा मरम्मत करता है। यह दूसरी प्रक्रिया हमें मारकर जिंदा रहती है। कैंसर कोशिका सामान्य कोशिका की तुलना में जल्दी तथा अच्छी तरह अनुकूलित होती है। यह (कैंसर कोशिका की वृद्धि) सामान्य वृद्धि की तुलना में अधिक स्पष्टतः होती है।

तब कैंसर से लड़ने का रहस्य, कमजोर कोशिकाओं में इस म्यूटेशन को होने से रोकना अथवा म्यूटेटेड कोशिका को, बिना सामान्य कोशिका को हानि पहुंचाए बाहर करना था। इस विवरण का सार कैंसर के काम की भयावहता को झूठा साबित कर देता है। दूषित वृद्धि तथा सामान्य वृद्धि आनुवंशिक रूप से एक दूसरे से गुंथी होती है जो अलग होने पर दो भागों में बंट जाती है। यह स्थिति शायद हमारी जैसी जाति के लिए सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण वैज्ञानिक चुनौतियों में से एक होगी। कैंसर हमारे जीनोम (जीनों के समूह) में विकसित होता है। जीन्स कोशिका विभाजन में सहायक होते हैं जो कि स्वाभाविक है लेकिन ये म्यूटेटेड होते हैं, ये किसी सही जीन का विकृत रूप होते हैं जो कि कोशिका के काम का आधार है। और कैंसर की छाप हमारे समाज पर गहरी है: अगर हम अपने जीवन फलक को एक मनुष्य की तरह विस्तृत करें तो हम बुरी चीजों को रोक नहीं पाएंगे (कैंसर के जीन में म्यूटेशन उम्र के साथ बढ़ता रहता है, इस प्रकार कैंसर स्वभावतः उम्र से संबंधित है।) अगर हम शाश्वत होना चाहते हैं, यदि संभव हो, तो भी विपरीत अर्थों में कैंसर कोशिका ऐसा करती है।

कैसे वास्तव में भावी पीढ़ी सामान्य कोशिका तथा दूषित कोशिका के उलझे हुए तारों को जान पाएगी। (20वीं सदी के जीव विज्ञानी जे. वी. एस. हल्दाने ने कहा "यह ब्रह्माँड जितना हम सोचते हैं, उतना ही अद्‌भुत नहीं है बल्कि उससे कहीं ज्यादा है जितना हम सोचते हैं। इस तरह यह विज्ञान का उड़ान पथ निर्धारित करता है।) लेकिन यह निश्चित है: यह कहानी चाहे जैसे सामने आए अतीत के महत्वपूर्ण हिस्से को सामने रखेगी। यह कहानी, लेखक के शब्दों में मानव समाज के सबसे 'क्रूर और घातक शत्रु' के खिलाफ मौलिकता, प्रतिरोधकता और निरंतर उद्यम की कहानी होगी। साथ ही यह घमंड, गुस्सा,

पित्रसत्तावाद, झूठी उम्मीद और प्रचार तथा ऐसे सभी प्रभावों की कहानी होगी जो एक बीमारी के विरुद्ध है जिनके लिए तीस साल पहले शेखी बघारी जाती थी कि ये सिर्फ कुछ सालों में ठीक हो सकते हैं।

एक खाली अस्पताल के विसंक्रमित हवा से भरे कमरे में कार्ला अपने कैंसर से लड़ रही थी। जब मैं पहुंचा तो वह अजीब सी शांति के साथ अपने बिस्तर पर बैठी संक्षिप्त से नोट्स बना रही थी। ("लेकिन कैसे नोट्स?" वह बाद में याद करती है "मैं बार–बार एक ही चीज लिख रही थी") उसकी मां रात की ही उड़ान से आई, उसकी लाल और आंसूभरी आंखें कमरे में आकर बरस पड़ीं कुछ देर में चुप होकर वह खिड़की के पास कुर्सी पर बलपूर्वक जड़वत हो गई। कार्ला के आसपास होने वाली सारी अवांछित सक्रियता जैसे नर्सों का आना जाना, उनका मॉस्क तथा गाउन पहनना, चौथी खूँटी पर एंटीबायोटिक लटकाकर उसकी नसों में लगाना, आदि वह निर्लिप्त ढंग से देख रही थी।

मैंने यथास्थिति को अपनी पूरी क्षमता से व्याख्यायित किया है। उसके आने वाले दिन ताबड़तोड़ परीक्षणों के तथा एक प्रयोगशाला से दूसरी के चक्कर लगाने वाले होंगे या इससे ज्यादा भी हो सकते हैं। लेकिन पहले वाले परीक्षणों में उसके लिम्फोब्लास्टिक ल्यूकोमिया की पुष्टि हो चुकी है। यह सामान्यतः बच्चों में होता है शायद ही कभी वयस्कों में और यहां पर एक चीज जरूर स्पष्ट करदूं कि यह प्रायः साध्य होता है।

'साध्य? कार्ला ने इस शब्द पर सिर हिलाया तथा उसकी आंखों में चमक आ गई। लाज़मी सवाल कमरे में गूंजा साध्य कैसे? क्या संभावना थी कि वह बच सकेगी? यह इलाज कितना समय लेगा? मैंने इसमें आने वाली बाधाओं का

एक खाका बनाया। एक बार रोग की पहचान पुष्ट हो जाने पर कीमोथेरेपी तुरंत शुरू होगी तथा एक साल से अधिक चलेगी। उसके सही होने का 30 प्रतिशत मौका था, तीन में एक से भी थोड़ा कम।

हमने करीब एक घंटे बातचीत की शायद इससे थोड़ी ज्यादा देर। इस समय सुबह का 9:30 बज चुका था। नीचे का सारा शहर पूरी तरह हरकत में आ चुका था। जैसे ही मैं कमरे से निकला दरवाजा अपने आप बंद हुआ तथा हवा की हल्की सी सरसराहट के साथ मैं बाहर तथा कार्ला अंदर बंद हो गई।

TH22973

भाग– एक

"काले पित्त का असंतुलित होना"

इस तरह की समस्या को सुलझाने में सबसे बड़ी बात है अपने आपको कुछ पीछे ले जाना तथा यह सबसे आसान भी है, लेकिन लोग इसको महत्व नहीं देते हैं।

– सर आर्थर कानन डॉयल रचित, *एक स्टड़ी इन स्कारलेट* में शेरलॉक होम्स

"खून का मवादीकरण"

बड़े–बड़े डॉक्टर तुरंत बुलाए गए जब वे आए तो बोले चूंकि हमने हमारी फीस ली है इसलिए बताते हैं कि इसका कोई इलाज नहीं है।''

-- हिलेरी बिलॉक

इस बीमारी को कम करना दिन प्रतिदिन का काम है इसके इलाज की आशा उत्सुकता भरी है।

–विलियम कैसल : 1950 में ल्यूकेमिया को व्याख्यायित करते हुए।

1947 के दिसम्बर की सुबह बोस्टन में एक सीलन भरे 14X20 की प्रयोगशाला में सिडनी फार्बर नाम का आदमी बेचैनी से न्यूयार्क से आने वाले पार्सल का इंतजार कर रहा था। यह 'प्रयोगशाला' किसी कैमिस्ट के स्टोर से जरा सी बेहतर थी, एक गैर हवादार कमरा बच्चों के अस्पताल में लगभग आधा जमीन से ऊपर तथा सबसे पीछे की गली में थी। कुछ सौ फीट की दूरी पर अस्पताल के चिकित्सा विभाग में बेतरतीब आवाजें करते हुए काम हो रहा था। सफेद स्मॉक में बच्चे फुर्ती से लोहे की चारपाई पर लाए तथा ले जाए जा रहे थे। डॉक्टर तथा नर्सें कमरों के बीच में तेजी से आ–जा रहे थे, ये तालिका देख रहे थे, आदेश लिखते थे तथा दवाएं भी बांट रहे थे। लेकिन फार्बर की प्रयोगशाला में कोई लिस्ट–विस्ट नहीं थी, यह एक सुनसान पिंजड़ा जैसा रसायन और कांच का बना था। यह मुख्य अस्पताल से बर्फ जैसे गलियारों की

श्रृंखला से जुड़ा था। फार्मलिन[13] की तीखी दुर्गंध हवा में व्याप्त थी। कमरों में कोई भी मरीज नहीं था, केवल मुर्दे व मरीजों के ऊतक शव परीक्षा तथा परीक्षण के लिए छोटी सुरंगों से आ रहे थे। फार्बर एक रोगविज्ञानी थे। उनके कर्तव्यों में नमूनों की चीरफाड़, शव परीक्षण करना, कोशिकाओं को पहचानना तथा बीमारियों की पहचान करना शामिल था। मरीजों का इलाज वे नहीं करते थे।

फार्बर की विशेषज्ञता बाल–चिकित्सा में थी। इन्होंने अपनी जिंदगी के 20 साल इन भूमिगत कमरों में पागलों की तरह अपनी सूक्ष्मदर्शी पर आंख गड़ाकर बिताए। इस तरह से वे अकादमिक ओहदे में ऊपर पहुंचे तथा बच्चों के रोग निदान (पैथोलॉजी) के सर्वेसर्वा बने। लेकिन फार्बर के लिए रोग–निदान विज्ञान चिकित्सा का अलगाव करने वाला रूप था एक ऐसा रूप जो जीवित की तुलना में मृतकों से अधिक जुड़ाव रखता है। इस बीमारी के बिल्कुल किनारे पर होने के कारण अब फार्बर की व्याकुलता बढ़ रही थी, क्योंकि वे जीवित मरीजों का इलाज नहीं कर पा रहे थे। वे कोशिकाओं व ऊतकों के इलाज से तंग आ चुके थे। वे अपने आपको शीशे की कोठरी में फंसा हुआ असहाय महसूस कर रहे थे।

और इस कारण फार्बर ने व्यवसाय बदलने का निश्चय किया। रासायनिक नमूनों को लेंस से देखने के बजाए वे सीढ़ियों के ऊपर चलने वाले अस्पताल के जीवन से रू–ब–रू होने जा रहे थे। एक रची–बसी सूक्ष्मदर्शी की दुनिया से मरीजों और बीमारियों की आवंछित दुनिया में। अपनी प्रयोगशाला से प्राप्त ज्ञान का, वे रोग संहारक की कल्पना करने में प्रयोग करने वाले थे। जो पार्सल न्यूयार्क से आने वाला था उसमें पीले, पारदर्शक रसायन की कुछ शीशियां थी जिसे हम अमीनोप्टेरिन[14] कहते हैं। ये शीशियां बोस्टन में स्थित उसकी प्रयोगशाला के लिए जहाज से आनी थी, इस क्षीण सी आशा के साथ कि ये बच्चों के ल्यूकोमिया पर कुछ विराम लगाएंगी।

---

[13] शवों पर लपेटा जाने वाला रसायन

[14] कीमोथेरेपी में प्रयोग होने वाला फोलिक एसिड का प्रतिरूप

शायद फार्बर ऊपर के अस्पताल में रहने वाले बाल रोग विशेषज्ञों से ल्यूकेमियारोधी दवा के विकास की संभावना के बारे में बात कर चुके थे, और उन लोगों ने फार्बर को ऐसे झंझट में न पड़ने की सलाह दी होगी। बाल्यावस्था का ल्यूकेमिया एक शताब्दी से भी ज्यादा समय से डॉक्टरों को आकर्षित, चकित और कुंठित करता आ रहा था। यह बीमारी विश्लेषित, वर्गीकृत, उपवर्गीकृत तथा सावधानीपूर्वक उपविभाजित की जा चुकी थी। यह सब सीलन भरी और चमड़े से बंधी किताबों में था जो लाइब्रेरी में बच्चों वाले खाने में रखी थी। इन किताबों में एंडरसन की 'पैथोलॉजी' अथवा बायड की 'पैथोलॉजी ऑफ इंटरनल डिजीज' है। इनमें ल्यूकेमिया कोशिका के चित्रों से पेज दर पेज भरे हैं साथ ही इसको व्याख्यायित करने के लिए वर्गीकरण भी दिया है। फिर भी यह सारा ज्ञान चिकित्सा विज्ञान की बेबसी को ही विस्तारित करता है। यह बीमारी थोथे सम्मोहन में ढल चुकी थी जैसे संग्रहालय में मोम की गुड़िया, जो देखी तो पूरी उत्सुकता के साथ जाती है लेकिन उसका व्यावहारिक महत्व नहीं होता। ये फिजीशियनों के लिए चिकित्सा संबंधी मीटिंगों में वाद–विवाद का विषय बनती थी। एक कैंसर विशेषज्ञ ने बताया "लेकिन इन सबसे मरीजों को कोई लाभ नहीं हो पाया। एक गंभीर रूप से ग्रसित ल्यूकेमिया का मरीज हड़बड़ी में लाया गया, उस पर कई चरणों में केवल व्याख्यान देने के लिए बहसें हुई और फिर एक पत्रिका को लिखना पड़ा "बीमारी को पहचाना, इधर–उधर भेजा अंततः वापस मौत के मुंह में भेज दिया।"

जब से ल्यूकोमिया खोजा गया तब से इसका अध्ययन भ्रांति और नैराश्य के गर्त में है। 19 मार्च 1845 को स्कॉटलैंड के फिजीशियन जॉन बेनेट ने एक 28 वर्षीय युवक का विचित्र प्रकरण बताया जिसमें कि उसके प्लीहा (तिल्ली) में हल्की सी रहस्यमयी सूजन थी। "वह गहरे रंग था।" बेनेट लिखते हैं "वह सामान्य लोगों जैसा स्वस्थ तथा शांत था, वह बताता है कि बीस महीने पहले उसे कुछ भी करने में भीषण आलस आता था जो कि अभी भी उतना ही है।

पिछले जून में उसने ध्यान दिया कि उसके पेढ़ू (पेट के निचले हिस्से में) के बाएं तरफ एक गांठ है जो कि धीरे–धीरे बढ़ी तथा पिछले चार महीनों से स्थिर है।

स्लेट की परत के आकार का यह ट्यूमर शायद अंतिम अवस्था में था जब वह स्थिर हो गया था। लेकिन उसकी स्वास्थ्यगत समस्याएं अब बढ़ रही थी। एक सप्ताह के अंदर बेनेट के मरीज में खतरनाक लक्षण दिखने चालू हो गए, इनमें बुखार, तेजी से खून निकलना, पेढ़ू में अचानक दर्द, बाद में यह भीषण होकर बार–बार होता था। जल्दी ही वह मौत के द्वार पर था। क्योंकि इस समय तक फूले हुए ट्यूमर उसकी बगल में, पेढ़ू तथा जांघ के बीच और गर्दन में निकल आए थे। इसका इलाज और शुद्धीकरण पारंपरिक रूप से जोंकों से किया गया था लेकिन हासिल कुछ नहीं हुआ। कुछ हफ्ते बाद उसके शव परीक्षण से बेनेट ने लक्षणों से कारणों का पता लगा लिया था। उनके उस मरीज का रक्त पूरी तरह सफेद रक्त कोशिकों से भरा था। (सफेद रक्त कोशिका मवाद का मुख्य कारण है, इसका मतलब है संक्रमण हो चुका है, बेनेट बताते हैं कि स्लेट की वह परत उसको निगल चुकी थी) "यह प्रकरण मेरे लिए काफी महत्व रखता है" उन्होंने आत्मविश्वासपूर्ण लहजे में लिखा "यह स्थिति मवाद की वास्तविकता को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त रहेगी, वाहिका तंत्र में ऐसी स्थिति सार्वभौमिक है।"[15]

अगर बेनेट मवाद का स्रोत नहीं जान पाते तो यह व्याख्या केवल कहने के लिए व्याख्या होती। उन्होंने मौत का कारण जानने के लिए शव की सूक्ष्म चीरफाड़ करके ऊतकों और अंगों को व्यवस्थित किया तथा फोड़े अथवा घाव का चिन्ह खोजने की कोशिश की। लेकिन ऐसा कोई 'चिन्ह'[16] वहां पर था ही नहीं। ऊपरी तौर से देखने पर रक्त मवाद जैसा दिखता था, जैसे कि अपने

---

[15] यद्यपि सूक्ष्म जीवों और संक्रमण में ठीक–ठाक संबंध अभी ज्ञात नहीं है। बेनेट यह अच्छी तरह जानते थे कि मावाद उसके एकत्रित होने की जगह और जहां से मवाद बनता है, के बीच क्या संबंध है। इसी फोड़े जैसे स्थान के कारण ही बुखार फिर मृत्यु हो जाती है।

[16] Stigmata- holy mark on the body of Jesus Christ

आप वास्तविक मवाद में बदल गया हो। बेनेट ने इस प्रकरण को "खून का मवादीकरण" कहा और उसको यथास्थिति में छोड़ दिया।

निःसंदेह बेनेट, अपने आप खून के मवाद में बदल जाने को लेकर गलत थे। बेनेट द्वारा इस बीमारी का उद्घाटन करने के यही कोई चार महीने बाद, जर्मनी के रूडोल्फ विरचो की बेनेट वाले प्रकरण से मिलती–जुलती केस–रिपोर्ट सामने आई विरचो की मरीज 50–60 साल के बीच की रसोइया थी। इसके रक्त में सफेद कोशिकाएं विस्फोटक तरीके से भर चुकी थी, इस वजह से उसकी तिल्ली (प्लीहा) गूदे जैसी भर गयी व गद्देदार दिखने लगी थी। हालत कुछ ऐसी थी कि उसकी जब शव परीक्षा हुई तो डॉक्टरों को संभवतः बिना सूक्ष्मदर्शी के ही दूध की तरह सफेद कोशिकाओं की एक मोटी सी परत उसकी तिल्ली के लाल आधार पर उतराती हुई दिखी। विरचो, बेनेट वाले केस के विषय में जानते थे लेकिन वे बेनेट के सिद्धांत में विश्वास न कर सके। विरचो के अनुसार खून बिना किसी हस्तक्षेप के अपने आप इस तरह रूपांतरित नहीं हुआ होगा। इसके अलावा बेनेट द्वारा बताए लक्षणों ने उन्हें परेशान अवश्य किया कि इस कदर बढ़ी हुए तिल्ली की वजह क्या थी? अथवा मवाद के स्रोत के रूप में किसी घाव आदि का न होना? विरचो को आश्चर्य हुआ कि रक्त अपने आप असामान्य क्यों हो गया। इस स्थिति के लिए वे कोई कारण नहीं ढूंढ पाए तथा इसका नाम निश्चित करने का प्रयास किया। अंततः विरचो ने 'वीसेस ब्लट'[17] को चुना यह उन लाखों सफेद कोशिकाओं के लिए एक नाम के सिवाए कुछ नहीं था जो उन्होंने अपने सूक्ष्मदर्शी में देखी थीं। 1847 में उन्होंने तुलनात्मक रूप से अधिक सैद्धांतिक लगने वाला शब्द "ल्यूकेमिया" प्रयुक्त किया। यह ग्रीक शब्द, 'ल्यूकोस' से आया है जिसका अर्थ 'सफेद' होता है बीमारी का नाम "खून के मवादीकरण" जैसे खून की रंगीनियत लिए नाम से 'बीसेस ब्लट' जैसा सपाट नाम करने में भले ही कोई वैज्ञानिक काविलियत न दिखे लेकिन इस कार्य ने ल्यूकेमिया को समझने में भारी मदद की। एक बीमारी जब पता चलती है तब क्षणभंगुर विचार होती है। ये विचार बाद में पल्लवित

[17] जर्मन शब्द जिसका अर्थ White Blood होता है. source: http://www.highbeam.com/doc/1G1-84395043.html

होते चले जाते हैं।

अतः यह बीमारी गहरे और गैर आनुपातिक रूप में नामों और वर्गीकरण से प्रभावित होती है। लगभग एक सदी के बाद तक, 1980 की शुरुआत में इसका नाम एक बार फिर परिवर्तित हुआ, इस बार GRID, (Gay related immuno disease) से AIDS (Acquired Immuno-Deficiency Syndrome) हुआ। ये परिवर्तन इस बीमारी को समझने के लिए एक लंबे व क्रांतिकारी परिवर्तन होगा।[18] बेनेट की तरह विरचो ल्यूकेमिया को समझ नहीं पाए। लेकिन विरचो ने बेनेट की तरह इसको समझने का दम नहीं भरा। उनकी अंतर्दृष्टि पूर्ण रूप से नकारात्मकता में थी। यह नकारात्मकता है सारी पूर्वकल्पनाओं को मिटा देना, उन्होंने विचारों के लिए जमीन साफ की।

नामावली के लचीलेपन ने विरचो की चिकित्सा पद्धति से निकटता को दिखाया (लचीलापन जो कारणों को समझने में अंर्तनिहित होता है)। ये वुर्जवर्ग विश्वविद्यालय में नए–नए प्रोफेसर थे, तथा ल्यूकेमिया के नामकरण करने के अलावा उनके काम ने विरचो की प्रसिद्धि दूर–दूर तक फैला दी। प्रशिक्षण से एक पैथोलॉजिस्ट होने के नाते उन्होंने एक परियोजना प्रारंभ की जिसने उनको जिंदगी भर के लिए बांध लियाः यह परियोजना थी मानवीय बीमारियों की साधारण कोशिकीय शब्दावली में व्याख्या करना।

इस परियोजना को कुंठा और निराशा ने जन्म दिया था। जब 1840 के शुरुआत में विरचो ने चिकित्सा विज्ञान को समझा, तब लगभग प्रत्येक बीमारी कुछ अदृश्य शक्तियों का परिणाम समझी जाती थी जैसे–बुरी हवा, अवसाद, एक बुरा मजाक और उन्माद आदि। जो नहीं देख पाए उसके प्रति वे हैरान थे,

---

[18] एचआईवी की पहचान एक कारक के रूप में करना तथा विषाणु का ब्रह्मांड में तेजी से फैलना जल्दी ही पीछे छूट गया। इसका एक सांस्कृतिक पहलू भी था– वह है समलैंगिकों से जुड़ा 'पूर्वाग्रह'।

लेकिन विरचो की निराशा उत्साह में बदल गई जब उन्होंने कोशिकाओं को सूक्ष्मदर्शी में देखा। 1838 में जर्मनी में काम करने वाले वनस्पति विज्ञानी मैथिअस श्लाइडेन तथा एक शरीर विज्ञानी थियोडोर श्वान ने दावा किया कि सभी जीवित वस्तुएं एक आधारभूत रचना, जिसे कोशिका कहते हैं, से निर्मित हुई हैं। विरचो ने इन लोगों से यह सिद्धांत उधार लेकर और विकसित किया तथा मानव जीव विज्ञान का कोशिकीय सिद्धांत दिया और एक नए पथ पर चल पड़े। इस सिद्धांत के दो मूल आधार थे। पहला, सभी प्राणधारियों के शरीर कोशिकाओं से बने होते हैं। दूसरा, कोशिकाओं के निर्माण के लिए केवल कोशिका ही जिम्मेदार होती है। दूसरे आधार के लिए विरचो ने कहा *"प्रत्येक कोशिका अपनी तरह की कोशिका को जन्म देती है।"*

दोनों आधारों को सरलीकृत किया गया लेकिन यह वास्तविकता नहीं थी। इसके आधार पर विरचो ने मानव में होने वाली वृद्धि के बारे में एक अतिमहत्वपूर्ण परिकल्पना प्रस्तुत की। यदि कोई कोशिका किसी अन्य कोशिका से पैदा होती है तो केवल दो तरीकों से वृद्धि हो सकती है या तो कोशिकाओं की संख्या बढ़ने से या कोशिकाओं का आकार बढ़ने से। इन दोनों को विरचो ने क्रमशः कोशिका की संख्या में वृद्धि (हाइपरप्लेसिया) तथा आकार में वृद्धि (हाइपर ट्राफी) कहा। हाइपर ट्राफी में कोशिकाओं की संख्या नहीं बदलती इसके बजाए प्रत्येक कोशिका सिर्फ गुब्बारे की तरह आकार बढ़ाती है। इसके विपरीत हाइपरप्लेसिया में स्वतः कोशिकाएं संख्या बढ़ाती है। मनुष्य के प्रत्येक जीवित ऊतक की व्याख्या इन दोनों आधारों पर हो सकी। वयस्क जीवधारियों में मोटापा तथा मांसपेशियां हाइपरट्रॉफी के कारण बढ़ती है। दूसरी ओर यकृत, रक्त, आंत तथा चमड़ी हाईपरप्लेसिया के कारण बढ़ती है। अर्थात् कोशिका कोशिका को बनाती है फिर कोशिका कोशिका बनाती है।

यह व्याख्या एक प्रभावशाली व्याख्या थी और इसने न केवल सामान्य वृद्धि को बल्कि चिकित्सकीय वृद्धि को समझने के लिए पृष्ठभूमि बनाई। सामान्य वृद्धि की तरह ही चिकित्सकीय वृद्धि भी हाईपरट्राफी तथा हाईपरप्लेसिया से समझी जा सकी। जब हृदय की मांसपेशी रूंधी हुई धमनियों को मुहाने की ओर

धक्का मारती है तो यह प्रायः अधिक बल लगाने के लिए मांसपेशी की प्रत्येक कोशिका को बड़ा करती हैं फलतः दिल के अंदर इसका आकार इतना बढ़ जाता है कि यह सामान्य काम भी लगभग बंद कर देती है। इसको चिकित्सकीय हाईपरट्रॉफी कहते हैं।

इसके विपरीत इस कहानी में महत्वपूर्ण यह है कि विरचो ने, संयोगवश, लेकिन जल्दी ही पैथोलॉजिकल हाईपर प्लेसियां (कैंसर) का महत्वपूर्ण भाग खोज लिया। अपनी सूक्ष्मदर्शी में कैंसरकारक वृद्धि देखते समय विरचो ने कोशिकाओं की अनियंत्रित वृद्धि खोज निकाली थी। यह हाइपर प्लेसिया का चरम रूप था। जैसा कि विरचो ने कैंसर की संरचना का परीक्षण किया तो पाया कि अनियंत्रित वृद्धि अपने आप हो रही है मानो कोशिकाओं को कोई रहस्यमयी ताकत चला रही हो। यह कोई सामान्य वृद्धि नहीं थी बल्कि यह वृद्धि को नए सिरे से परिभाषित कर रही थी, एक नए रूप में। अनुमानतः विरचो ने इसे 'नियोप्लासिया' नाम दिया (यद्यपि वे इसकी क्रियाविधि से अनजान थे)। यह एक अद्‌भुत, अकथनीय और एक विकृत वृद्धि थी, यह एक ऐसा शब्द था जो कैंसर के इतिहास में घूमता रहा। (विरचो यह शब्द नहीं लाए हालांकि उन्होंने नियोप्लासिया का विशद विवेचन प्रस्तुत किया)।

जब 1902 में विरचो की मृत्यु हुई तब तक कैंसर की एक नई परिभाषा इन प्रेक्षणों में जुड़ चुकी थी कि कैंसर चिकित्सकीय हाईपरप्लेसिया है जिसमें कोशिकाएं अपने आप विभाजित होने की शक्ति अर्जित कर लेती हैं। यह विचित्र प्रकार का अनियंत्रित कोशिका विभाजन ऊतकों को समूहबद्ध (टयूमर) कर देता था। यह ट्यूमर अपना स्थान परिवर्तित कर सकता है, जब यह दूसरे स्थान पर उभरता है तो इसे मेटास्टेसस कहा जाता है जैसे किसी हड्डी, मस्तिष्क या फेफड़े में उभरना। कैंसर विभिन्न रूपों – छाती, पेट, त्वचा, गर्दन, ल्यूकेमिया और लिम्फोमस में आया था। लेकिन ये सभी प्रकार के विकार गहरे तक कोशिकीय स्तर से जुड़े थे। प्रत्येक स्थिति में कोशिकाओं में एक ही प्रकार का लक्षण उभरता था– अनियंत्रित चिकित्सकीय कोशिका विभाजन।

इसको ध्यान में रखकर 1880 के बाद क़े रोग विज्ञानियों ने जो ल्यूकेमिया का अध्ययन कर रहे थे, विरचो के काम को आगे बढ़ाया तब ल्यूकेमिया का मतलब रक्त का मवाद बनना न होकर रक्त का 'नियोप्लासिया' (ऊतकों की अनियंत्रित वृद्धि) होना हुआ। बेनेट की समयपूर्व की कल्पना उन कल्पनाओं का एक हिस्सा थी जो समस्त वैज्ञानिकों में व्याप्त थी। ये वैज्ञानिक ल्यूकेमिया कोशिका में से बाहर आने वाले अदृश्य परजीवी तथा जीवाणुओं को खोजने में तल्लीन थे (अंततः सफल भी रहे)। फिर अचानक रोगविज्ञानियों का ध्यान संक्रमण के कारणों पर गया और उन्होंने अपनी सूक्ष्मदर्शियों के लेंस इस बीमारी पर केंद्रित कर दिए फलतः उन्होंने ल्यूकेमिया तथा उच्च कैंसर कोशिकाओं के बीच स्पष्ट समानता खोज निकाली। ल्यूकेमिया रक्त में सफेद कोशिकाओं का प्राणघातक प्रसार था। यह कैंसर का पिघला तथा द्रवीकृत रूप था।

इस बेहतरीन प्रेक्षण से ल्यूकेमिया संबंधी अध्ययन में स्पष्टता आई और एक झटके के साथ इसने गति पकड़ी। 1900 ई. की शुरुआत में यह स्पष्ट हो गया था कि इस बीमारी के कई रूप हैं। यह दुष्कर व धीमी हो सकती है जो कि धीरे–धीरे अस्थि–मज्जा तथा तिल्ली (रक्त कोशिका की विशेषता को निर्धारित करता है) को जाम कर देती है। विरचो वाले प्रकरण में ऐसा ही हुआ था जिसको बाद में जिद्दी ल्यूकेमिया कहा गया। अथवा यह तीक्ष्ण व घातक हो सकता है, लगभग एक अजीब सी बीमारी जिसमें कि अचानक तीव्र बुखार या बैठे–बैठे कंपकंपाना, खूनी उल्टी या कोशिकाओं में आश्चर्यजनक वृद्धि हो जाती है, जैसा कि बेनेट के मरीज में था।

इस बीमारी का यह दूसरा संस्करण जिद्दी ल्यूकेमिया कहा गया। यह इस पर निर्भर करता है कि इसमें कितनी कैंसरकारी कोशिकाएं शामिल हैं और इसके दो उपप्रकार होते हैं। रक्त में शामिल सामान्य सफेद कोशिका मोटे तौर पर दो प्रकारों में विभाजित की जा सकती हैं– माइलॉयड कोशिका और लिम्फोइड कोशिका। एक्यूट माइलॉयड ल्यूकेमिया (AML) *माइलॉयड* कोशिका का कैंसर था तथा एक्यूट लिम्फोब्लास्टिक ल्यूकेमिया (ALL) अपरिपक्व *लिम्फोइड* कोशिकाओं का जबकि परिपक्व लिम्फोइड कोशिकाओं के कैंसर को लिम्फोमस कहते हैं।

बच्चों में सामान्यतः ALL प्रकार का ल्यूकेमिया था और यह हमेशा ही प्राणाघातक रहा। 1860 में विरचो के एक छात्र माईकल एल्टन बिरमर ने बाल्यावस्था

के ल्यूकेमिया के इस प्रकार के प्रथम ज्ञात प्रकरणको व्याख्यायित किया। वुर्जवर्ग के एक बढ़ई की पांच वर्षीय हंसमुख, चंचल, मारिया स्पीयर नाम की बेटी थी। उसको पहले पहल अस्पताल तब जाना पड़ा जब उसने स्कूल में भीषण थकान की शिकायत की तथा उसके शरीर पर रक्तिम खरोंच के निशान भी आ गये, यह सब बिरमर के लिए घर आने का बुलावा था। उस रात बिरमर ने मारिया की नस से एक बूंद खून निकाला तथा मोमबत्ती की रोशनी में सूक्ष्मदर्शी से देखा तो उन्हें असंख्य ल्यूकेमिया कोशिकाएं मिली। मारिया उस शाम ठीक–ठाक रूप से देर में सोयी। अगले दिन दोपहर बाद जब बिरमर महोदय उत्तेजनापूर्वक अपने सहकर्मी को *"ल्यूकेमिया का उत्कृष्ट नमूना"* दिखा रहे थे तब तक मारिया रक्त की उल्टी करके कोमा में जा चुकी थी। जब बिरमर उसके घर में वापस आए तब पाया कि वह बच्ची कई घंटे पहले मर चुकी है। इस बीमारी के पता चलने से लेकर उसके मरने तक उस निर्दयी और सरपट दौड़ने वाली बीमारी ने तीन दिन से अधिक समय नहीं लिया।

हालांकि बहुत ही कम इतना आक्रामक ल्यूकेमिया देखने को मिलता है जितना मारिया का था लेकिन कार्ला की बीमारी भी अपने आप में विस्मित कर देने वाली थी। एक वयस्क में औसतन 5000 श्वेत रक्त कोशिका प्रति माइकोलीटर रक्त में पाई जाती है जबकि कार्ला के खून में यह संख्या प्रति माइकोलीटर 90,000 थी। यह सामान्य की लगभग 20 गुना है। इन कोशिकाओं में से लगभग 90 प्रतिशत कोशिकाएं फट चुकी थी। इनसे घातक लिम्फोइड कोशिकाएं तीव्र गति से उत्पन्न हुई लेकिन ये पूर्ण विकसित लिम्फोसाइट में परिवर्तित नहीं हो पाई। एक्यूट लिम्फोब्लास्टिक ल्यूकेमिया में भी अन्य तरह के कैंसरों की भांति कैंसर कोशिका का अतिउत्पादन अज्ञात अवरोध से जुड़ा रहता है, ऐसा सामान्य रूप से परिपक्व हो रही कोशिका में होता है। इस प्रकार लिम्फोइड कोशिकाएं तीव्रतम तरीके से बढ़ती है लेकिन वे परिपक्व नहीं हो पाती। ये कोशिकाएं सूक्ष्म जीवाणुओं से लड़ने में अपने सामान्य कार्य नहीं कर पाती। कार्ला की प्रतिरोधकता रोग के मुकाबले जीर्ण–शीर्ण थी।

सफेद रक्त कोशिकाएं अस्थि–मज्जा में बनती है। मेरी कार्ला से पहली

मुलाकात के बाद सुबह जब मैंने उसकी अस्थि–मज्जा की बायोप्सी देखी तो वह बेहद असंतुलित मिली। यद्यपि ऊपरी तौर पर अस्थि–मज्जा एक अंग के रूप में अति व्यवस्थित होती है, वास्तव में यह एक ऐसा अंग है जो वयस्कों में खून का निर्माण करता है। विशिष्टतया अस्थि–मज्जा की बायोप्सी में हड्डियों की बारीक कांटेनुमा संरचना होती है और इन कांटो में विकासशील रक्त कोशिकाओं का समूह होता है। यह स्थान रक्त–निर्माण के लिए नर्सरी का काम करता है। कार्ला की मज्जा में यह स्थान पूर्णतः नष्ट हो चुका था। इसकी मज्जा में घातक विस्फोट से उत्पन्न कोशिकाओं की परत–दर–परत जमा हो गई थी जिससे मज्जा का स्थान पूरा भर गया था। सारी रचना और संरचना भंग हो चुकी थी। इस तरह रक्त–निर्माण के लिए अब जगह शेष नहीं थी।

कार्ला अंधी, गहरी खाई में जाने की कगार पर थी। उसकी लाल रक्त कोशिकाएं इतनी कम रह गई थी कि उनसे ऑक्सीजन की आपूर्ति संभव नहीं हो पा रही थी। (कार्ला के जिस सिरदर्द की चर्चा पहले की गई वह ऑक्सीजन की कमी का पहला लक्षण था)। उसके प्लेटलेट (बिंबाणु) जो खून का थक्का जमा करते है, लगभग शून्य तक पहुंच गए परिणामतः खरोंच के निशान उभर आए थे।

उसके इलाज के लिए अतिरिक्त कुशलता की आवश्यकता होगी। उसको ल्यूकेमिया खत्म करने के लिए कीमोथेरेपी लेनी पड़ेगी लेकिन साथ ही यह संभावना भी है कि कीमोथेरेपी शेष सामान्य कोशिका का दसवां हिस्सा भी कम कर देगी। हम उसको बचाने के चक्कर में और धक्का दे देंगे। कार्ला के लिए दरिया से बाहर निकलने का रास्ता दरिया में से होकर गुजरेगा।

विरचो की मृत्यु 1902 में बर्लिन में हुई। एक साल बाद 1903 में सिडनी फार्बर का जन्म बफेलो (न्यूयॉर्क) में हुआ। उनके पिता पोलैंड में एक पुराने नौका–निर्माता थे। वे अमेरिका में 19वीं सदी के अंत में बस गए तथा एक बीमा एजेंसी में काम करते थे। यह परिवार साधारण परिस्थितियों में कस्बे के पूर्वी छोर पर रहता था। यह जगह घनी, अलग–थलग और प्रायः आर्थिक रूप से विपन्न

दुकानदारों, फैक्टरी मजदूरों, पुस्तक विक्रेता तथा फेरीवाले यहूदी समुदाय के लोगों की थी। फार्बर ने अपने बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया फलतः वे उच्च शैक्षिक स्तर को पा सके। वहां ऊपर के स्तर पर यिडिश[19] तथा नीचे के स्तर पर जर्मन व अंग्रेजी बोली जाती थी। सिडनी फार्बर के पिता घर में आते समय अपने साथ पुस्तकें लेकर आते थे। इन पुस्तकों को वे खाने की मेज पर फैला देते थे और चाहते थे कि बच्चे अपनी पसंद की पुस्तक उठाएं तथा उनको बताए कि उसने क्या पढ़ा?

सिडनी, जो 14 बच्चों में तीसरे नंबर का था, का पालन–पोषण ऐसे उच्च महात्वाकांक्षा वाले माहौल में हुआ था। उन्होंने जीवविज्ञान और दर्शनशास्त्र दोनों का अध्ययन कॉलेज में किया और 1923 में बफैलो विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि ली। वे अपनी शिक्षा को सुचारू रखने के लिए खाली समय में वॉयलिन भी बजाते थे। उनका जर्मन भाषा पर अच्छा अधिकार था। उन्होंने चिकित्सा का प्रशिक्षण हीडेलबर्ग और फ्रीबर्ग में प्राप्त किया इस तरह जर्मनी में कुशलता प्राप्त करने के बाद उनको द्वितीय वर्ष के चिकित्सा के छात्र के रूप में बोस्टन के हार्वर्ड मेडिकल स्कूल में स्थान मिल गया। हीडेनबर्ग होकर न्यूयॉर्क से बोस्टन तक की यह गोलाकार यात्रा अस्वाभाविक नहीं थी। 1920 के दशक के मध्य में, यहूदी छात्रों के लिए अमेरिका के चिकित्सा विद्यालयों में स्थान पाना प्रायः असंभव था– ज्यादातर लोग यूरोप में, यहां तक कि जर्मनी में भी जाते थे। इस प्रकार फार्बर एक बाहरी व्यक्ति के तौर पर हार्वर्ड पहुंचे। उनके सहकर्मी उनको अवांछित व अहंकारी समझते थे। लेकिन फार्बर स्वयं यह दोबारा भोग रहे थे जो वह भोग चुके थे, ऐसा लग रहा था वे यह सब झेल रहे थे। वे सामान्य स्पष्ट तथा सतर्क थे तथा वे दिखने में कड़क स्वभाव वाले और प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज कराने वालों में से थे। उनकी सामान्य वेश–भूषा को देखकर उनका नाम जल्दी ही चार–बटनी सिड कर दिया गया था।

फार्बर ने 1920 के दशक के आखिरी में उच्च श्रेणी का प्रशिक्षण पैथोलॉजी में पूरा किया और बोस्टन के चिल्ड्रेन्स हॉस्पिटल में पहले पूर्णकालिक पैथोलॉजिस्ट बने। उन्होंने बच्चों के ट्यूमर पर बेहतरीन काम किया और *The Postmartem Examination* नामक पुस्तक की रचना की। उनकी यह पुस्तक क्षेत्र विशेष की उत्कृष्ट रचना मानी जाती है। 1930 के दशक के मध्य तक अस्पताल में वे श्रेष्ठ

---

[19] मध्य व पूर्वी यूरोप में बोली जाने वाली यहूदियों की भाषा

पैथोलॉजिस्ट के रूप में स्थापित हो गए थे....''एक डॉक्टर मुर्दों का।''

अभी तक रोग ठीक करने की प्रबल आकांक्षा फार्बर को आगे बढ़ाती रही। 1947 की गर्मियों में अपने भूतल की प्रयोगशाला में बैठकर फार्बर ने एक मात्र उद्देश्य निर्धारित किया: वह कैंसर के सभी प्रकारों में से एक विषम और भयानक प्रकार था– बाल्यावस्था का ल्यूकेमिया। उनके दिमाग में एक चीज जो बिल्कुल साफ थी कि कैंसर को संपूर्णता में समझने के लिए उसकी जटिलता की जड़ को आधार से ही खोजना पड़ेगा। ल्यूकेमिया की कई विशेषताएं होने के बावजूद उसकी एक आकर्षित करने वाली विशेषता भी थी वह थी– इसकी सीमा निर्धारित की जा सकती है।

कोई भी विज्ञान गणनाओं से शुरू होता है। तथ्य को समझने के लिए जरूरी है कि वैज्ञानिक को तटस्थ भाव से बीमारी का चित्र खींचना चाहिए और यह भी जरूरी है कि वह उसकी परिसीमा निर्धारित करे। यदि कैंसर की दवाओं को सही अर्थों में विज्ञान में बदला जाए तो कैंसर की किसी भी तरह से सीमा निर्धारित करनी पड़ेगी, उसको भरोसेमंद या पुनरूत्पादनीय तरीके से परिभाषित करना होगा।

इस तरह से ल्यूकेमिया कैंसर के लगभग सभी प्रकारों से अलग था। सीटी स्कैन और एमआरआई से पहले के समय में छाती या फेफड़े के ट्यूमर की परिसीमा बिना ऑपरेशन के निर्धारित नहीं की जा सकती थी क्योंकि जिसे तुम देख नहीं सकते उसको माप कैसे सकते हो। लेकिन ल्यूकेमिया मुक्त रूप से रक्त में विचरण करता रहा, इसका पता करने में उतनी ही कठिनाई हुई जितनी किसी कोशिका को पता करने में होती है क्योंकि रक्त या अस्थि–मज्जा का एक नमूना लेकर उसको सूक्ष्मदर्शी से देखना पड़ता था।

फार्बर ने बताया, अगर ल्यूकेमिया को समझा जा सका तो सामान्य प्रक्रिया में हस्तक्षेप करके, वह था एक रसायन को खून के जरिए शरीर में घुमाना। वे आगे कहते हैं इस कारण से जीवित मानव में ल्यूकेमिया की प्रबलता पता चल सकी। इससे वे जान पाए कि रक्त में कोशिकाएं बढ़ या घट रही हैं जिससे दी गई दवाई की सफलता या असफलता का पता चल पाया। यह एक 'प्रयोग' था जो वे कैंसर पर कर पाए।

इस विचार ने फार्बर को सम्मोहित क़र दिया था। साधारण तरीके से जटिल संकल्पना को समझने के इस विचार ने 1940–50 के दशक में युवा वैज्ञानिकों को और अच्छा करने की प्रेरणा दी थी। एककोशीय जीव जैसे जीवाणु ने मानव जैसे जटिल व बहुकोशीय जीवों की कार्यप्रणाली को प्रकट किया। ई–कोली (ई–कोली, एक सूक्ष्मदर्शीय बैक्टीरिया) का सच क्या है, 1954 में एक फ्रांसीसी जैव रसायनज्ञ जैक्स मोनोड ने सुलझाकर बताया जो कि हाथियों पर भी लागू होता है।

फार्बर के लिए ल्यूकेमिया जैव वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में एक नमूना था। इससे अन्य कैंसरों के विस्तृत तथा जटिल संसार में से इसका (ल्यूकेमिया) एक तरह से निर्धारण कर दिया था। एक जीवाणु ने उनको हाथी के बारे में विचार करवाया। वे स्वभाव से एक तेज व मनमौती विचारक थे और यहां भी उन्होंने स्वभावगत काम किया था। दिसंबर की उस सुबह न्यूयार्क से आया हुआ पार्सल प्रयोगशाला में उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। उन्होंने जब उसको खोला और रसायन भरी हुई शीशियों को निकाला तो शायद ही उन्होंने सोचा होगा कि वे कैंसर के चिंतन का एक नया रास्ता खोल रहे हैं।

''गुलोटिन से ज्यादा आदमखोर दैत्य''

ल्यूकेमिया की चिकित्सकीय महत्ता इसके वास्तविक प्रभावों से मेल नहीं खाती.... वास्तव में इसके क्रमबद्ध इलाज के दौरान आने वाली समस्याएं सामान्य दिशा–निर्देशों की सूचक थी जिनमें कैंसर संबंधी शोध अपना अस्तित्व रखता था।

– जोनाथन टकर,

एलीः ए चाइल्डस फाइट अगेंस्ट ल्यूकेमिया

काफी लोगों तक पहुंच रखने वाले कैंसर के इलाज में कुछ ही सफलताएं सुनिश्चित थीं.... सामान्यतः यह कैंसर की गांठ को बढ़ते हुए और मरीज को तिल–तिल कम होते हुए देखना था।

जॉन लेसलो, *The cure of Childhood Luckemia: Into the Age of Miraclus*

सिडनी फार्बर का रसायनों से भरा पैकेट चिकित्सा के इतिहास में एक खास समय पर पहुंचा। 1940 के दशक के अंत में औषधीय चिकित्सा की खोजें प्रचुर रूप में पूरे देश में स्थित प्रयोगशालाओं और अस्पतालों में होने लगी। इनमें सबसे ज्यादा महत्व जिस दवा का था व थी प्रतिजैविक (एण्टीबॉयोटिक) पेन्सिलीन जैसा बेशकीमती रसायन, जिसकी अंतिम बूंद तक द्वितीय विश्वयुद्ध के समय उपयोग की गई थी (1939 में, यह दवाई जिन लोगों ने ली उनकी पेशाब से इसको पुनः निकालकर संरक्षित किया गया) 50 के दशक के प्रारंभ में हजारों गैलन के कंटेनरों में बनाई जा रही थी। 1942 में जब मर्क ने केवल साढ़े पांच ग्राम की मात्रा बाहर भेजी तो यह मात्रा अमेरिका में स्थित एण्टीबॉयोटिक के समस्त भण्डार का लगभग आधा होती थी।

दस साल बाद जब पेन्सिलीन बड़े पैमाने पर बनाई जाने लगी तब इसका दाम एक खुराक के लिए चार सेंट तक पहुंचा जो कि आधा गैलन दूध के दाम का 1/8 था।

पेन्सिलीन के पगचिन्हों पर चलकर कुछ नए एण्टीबॉयोटिक अस्तित्व में आए इनमें 1947 में बना क्लोरम्फेनीकोल तथा 1948 में बना टेट्रासाइक्लीन था। 1949 की सर्दियों में जब एक चमत्कारिक एण्टीबॉयोटिक एक कुक्कुट पालक के अहाते में स्थित फफूंद के ढेर से परिष्कृत करके निकाली गई जिसको स्ट्रेप्टोमाइसिन कहते हैं तब टाईम पत्रिका ने मुहावरेदार भाषा में बड़ी ही शान से छापा *"बगल में छोरा गांव भर में ढिंढोरा।"* चिल्ड्रेन्स हॉस्पिटल के दूर वाले कोने पर स्थित ईंटों की इमारत जो फार्बर के पिछवाड़े स्थित है, में जॉन एन्डर नाम का सूक्ष्म जीव विज्ञानी एक घूमने वाले फ्लॉस्क में पोलियो वायरस का संवर्धन करता हैं यह साबिन व साक[20] के विकास की प्रथम सीढ़ी थी। 1950 तक नई तरह की दवाएं अस्तित्व में आई। इस समय (1950) तक जो दवाएं प्रचलित थी उनमें आधे से अधिक के बारे में 10 साल पहले पता तक नहीं था।

शायद इन चमत्कारी दवाओं से भी ज्यादा महत्वपूर्ण सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता में परिवर्तन था। उसने भी जबर्दस्त तरीके से बीमारियों के चेहरे बदल दिये। टाइफाईड बुखार जैसी संक्रामक बीमारी, जिसका जानलेवा फंदा संपूर्ण जिले का दसवां भाग कुछ ही हफ्तों में कम कर देता था, ढीला पड़ गया, जब कई शहरों में पहुंचने वाला बदबूदार पानी नगरपालिका के भागीरथ प्रयत्नों से साफ किया गया। यहां तक कि टीबी जो 19वीं सदी के 'सफेद प्लेग' के नाम से कुख्यात था लुप्त होने लगा था। 1910 से 1940 के बीच इसकी मारक क्षमता तेजी से घटी तथा आधी से भी कम हो गईं इसका श्रेय मुख्यतः साफ–सफाई के बेहतर सामुदायिक प्रयासों को जाता है। 50 साल के अंदर अमेरिकियों की जीवन–प्रत्याशा सैंतालिस से बढ़कर 58 साल हो गई। पिछली कई शताब्दियों की तुलना में दीर्घजीवन संबंधी यह एक लंबी छलांग थी।

युद्धोत्तरकालीन दवाओं की व्यापक सफलता ने अमेरिकी जीवन में विज्ञान और तकनीकि की प्रबल और गुणकारी क्षमता का ज्वलंत उदाहरण पेश किया। अस्पतालों की संख्या भी बढ़ी 1945 से 1960 के बीच पूरे देश में लगभग एक हजार अस्पतालों

---

[20] पोलियो के टीके

की स्थापना हुई। साथ ही 1935 से 1952 के बीच प्रतिवर्ष अस्पताल में भर्ती होने वाले मरीजों की संख्या 7 मिलियन से 17 मिलियन हो गई जो दोगुने से भी अधिक थी तथा चिकित्सकीय देखभाल में वृद्धि चिकित्सकीय इलाज की अपेक्षा को साथ लेकर आई। जैसा कि एक छात्र ने ध्यान दिया "जब कोई डॉक्टर मरीज को बताता है कि उसकी इस स्थिति में कोई उपचार नहीं हो पाएगा (वह मरीज) उस क्षण अपने आप को अपमानित महसूस करता है या सोचता कि शायद ही डॉक्टर अपने समय के साथ–साथ चल रहा है।"

इस प्रकार नई पीढ़ी ने एक नए व स्वच्छ उपनगरीय कस्बों में रोग मुक्त होने का सपना देखा– एक मृत्युरहित व रोग रहित अस्तित्व का। जीवन के स्थायित्व का विचार आने से पहले ये लोग अपने को उपभोग्य सामग्रियों के हवाले कर चुके थे इनमें से थी – नाव के आकार की घोड़े से खींचने वाली गाड़ी, मुलायम कपड़े के परिधान, टीबी, रेडियो, वाशिंग मशीन, गोल्फ क्लब, छुट्टी बिताने के स्थान, खाना बनाने की आधुनिक मशीनें आदि। एक बड़े द्वीप में स्थित आलू के खेतों में विकसित होते हुए उपनगरीय कस्बे लेवीटाउन में "बीमारियों" जैसा प्रतीकात्मक कल्पना लोक "दुखों" की सूची में "आर्थिक दुख" और "बच्चों संबंधी दुख" के बाद तीसरे स्थान पर पहुंच गया था। वास्तव में बच्चों को लेकर चिंता राष्ट्रीय चिंता थी जिसे अभूतपूर्व तरीके से स्वीकार किया जा रहा था। जन–उत्पादकता निरंतर बढ़ रही थी, 1957 तक प्रत्येक सात सेकेंड में अमेरिका में एक बच्चा जन्म ले रहा था। एक "समृद्ध समाज" जैसा कि अर्थशास्त्री जॉन गॉलब्रेथ ने परिभाषित किया भी, हमेशा जवान रहने का सपना देखने लगा था। इसकी वजह अच्छे स्वास्थ्य की गारंटी होना माना जाता था– यह एक अजेय समाज जैसा था।

लेकिन सभी बीमारियों में केवल कैंसर ऐसी थी जिसने कदमों में झुकने से इंकार कर दिया। अगर कोई गांठ सीमित है (मतलब किसी एक अंग में है या जिसे ऑपरेशन करके कोई डॉक्टर निकाल सके) तो उसके सही होने की एक उम्मीद बनती है। इन तरीकों को बाद में मूलोच्छेदन कहा गया और ये 19वीं सदी से चली

आ रही शल्य चिकित्सा की परंपरा का प्रभावशाली विकास था। कहा जाता है कि स्तन की एक अकेली दूषित गांठ को, 1890 के दशक में जॉन हापकिंस में महान शल्य चिकित्सक विलियम हाल्सटेड की अगुआई में एक विलक्षण ऑपरेशन द्वारा खत्म किया गया था। 1900 के दशक में एक्स–रे की खोज हो जाने से विकिरण द्वारा स्थान विशेष की गांठ को खत्म किया जाना संभव हो सका।

वैज्ञानिक दृष्टि से कैंसर अभी भी ब्लैक बॉक्स की तरह रहस्यमयी बना रहा एक ऐसा रहस्य जो कि जटिल चिकित्सकीय माथापच्ची की अपेक्षा पूरा हिस्सा ही बाहर निकाल देने से सुलझ सकता था। कैंसर के इलाज के (यदि किसी भी तरह हो सके) लिए डॉक्टरों के पास दो तरह की रणनीतियां थीं या तो उस गांठ को ऑपरेशन से बाहर निकाल देना या विकिरण द्वारा खत्म करना दूसरे शब्दों में कहें तो प्रचण्ड किरण या शीतल चाकू[21] में से किसी एक को चुनना।

फार्बर के अपने रसायनों के साथ प्रयोग शुरू करने के लगभग 10 साल पहले, 1937 की मई में फार्च्यून पत्रिका ने कैंसर की चिकित्सा से संबंधित "विहंगम सर्वेक्षण छापा। इस खबर से सुकून किसी को नहीं मिला था... "आश्चर्यजनक यह है कि चिकित्सा का कोई नया 'सिद्धांत' चलन में नहीं है, चाहे वह बीमारी मिटाने का हो या रोकने का... अब इलाज के तरीके अधिक प्रभावशाली व मानवीय हो चुके हैं। बिना किसी निश्चेतक या रोगाणुमुक्तता के होने वाले अपरिष्कृत ऑपरेशन का स्थान आधुनिक दर्दरहित ऑपरेशन ने ले लिया है जो कि उत्कृष्ट व परिष्कृत तकनीकी से संभव है। पहले के मरीजों के कैंसर प्रभावित हिस्से को गलाकर समाप्त कर देने वाले पदार्थ से होने वाली चिकित्सा–पद्धति को एक्स–रे व रेडियम ने अनुपयोगी बना दिया... लेकिन वास्तविकता यह है कि अभी भी कैंसर के इलाज के लिए दो तरीकों का सहारा लिया जाता है– प्रभावित ऊतक को निकाल देना और उसको वहीं पर खत्म कर देना (पहले यह ऑपरेशन से होता था अब एक्स–रे से)। इसके अलावा और कुछ भी अलग नहीं है।"

फॉर्च्यून के इस आलेख का शीर्षक था "कैंसरः एक भयानक अंधेरा" और इस "अंधेरे" का कारण लेखक ने राजनीतिक व चिकित्सकीय रूपों में परिभाषित किया था। कैंसर की चिकित्सा का पहिया एक बनी बनाई लीक में धंसा हुआ था। इसका

[21] A kind of Cancer Therapy.

कारण केवल चिकित्सा संबंधी जटिलताएं नहीं थी, बल्कि कैंसर शोध को लेकर, व्यवस्थापिका की उपेक्षा भी थी। उसने लिखा : "अमेरिका में दो दर्जन से अधिक फंड कैंसर के आधुनिक शोध के लिए नहीं है। इनकी भी सीमा 500 डॉलर से 20 लाख डॉलर तक ही है तथा इस फंड की सकल पूंजी 50 लाख डॉलर से ज्यादा नहीं है... इतना तो जनता स्वेच्छा से एक दोपहरी में फुटबाल मैच देखने पर खर्च कर देती है।"

शोध क्षेत्र के फंड की स्थिरता तेजी से महत्वपूर्ण होती जा रही बीमारी के उलटी दिशा में है। 19वीं सदी के अमेरिका में कैंसर की अच्छी खासी उपस्थिति थी जो कि ध्यान खींचने वाली थी लेकिन यह अन्य सामान्य बीमारियों के साये के पीछे छिप गई थी। बफैलो के एक सुविख्यात सर्जन रोजवेला पार्क ने जब 1899 में कहा कि एक दिन कैंसर चेचक, टाइफाईड बुखार तथा टीबी जैसी बीमारियों को पछाड़कर देश में सबसे बड़ा मृत्यु का कारण बनेगा। इस बात को "चमत्कारिक चेतावनी" की जगह एक ऐसे व्यक्ति का अतिशयोक्तिपूर्ण बयान समझा गया जो आखिरकार दिन–रात कैंसर का ऑपरेशन करने में मस्त रहता है। लेकिन दशक का अंत होते–होते इस कथन की चमत्कारिकता कम से कमतर होती गई और चेतावनी का भाव प्रबल से प्रबलतर। टाइफाईड की कुछ घटनाओं को छोड़ दे तो यह धीरे–धीरे अपवाद होता जा रहा था। 1949 तक अमेरिका में चेचक लगभग समाप्त हो चुकी थी। इसी बीच कैंसर अन्य बीमारियों की तुलना में मौत तक जाने वाली सीढ़ी पर सधे हुए कदमों से चढ़ रहा था। 1900 से 1916 के बीच कैंसर संबंधी मृत्युदर 29.8 प्रतिशत तक पहुंच गई तथा इसने टीबी को पीछे छोड़ दिया। 1926 तक कैंसर हृदय रोगों के तुरंत बाद दूसरे स्थान पर था जो राष्ट्र में मृत्यु के सबसे बड़े कारण थे।

"कैंसरः एक भयानक अंधेरा" नामक आलेख कैंसर के खिलाफ राष्ट्र को समन्वित प्रयास कराने वाला अकेला नहीं था। उसी साल मई में 'लाईफ' (एक पत्रिका) ने कैंसर शोध पर बिल्कुल इसी तरह की ताकीद की थी। 'द न्यूयॉर्क टाइम्स' ने अप्रैल और जून में कैंसर की बढ़ती दर को लेकर दो चर्चाए छापी। जब 1937 की जुलाई में कैंसर 'टाईम' पत्रिका के पन्नों पर नमूदार हुआ तब कैंसर समस्या छूत की बीमारी की तरह मीडिया में चर्चित होने लगी।

1900 के शुरुआती दशक में कैंसर के विरुद्ध सुव्यवस्थित राष्ट्रीय विचार बंधे–बंधाए तरीके से आते–जाते रहे। 1907 में कैंसर विशेषज्ञों का एक दल कांग्रेस का जनमत कैंसर शोध के पक्ष में करने के लिए वाशिंगटन के न्यू बिलार्ड होटल में इकट्ठा हुआ। 1910 तक यह संगठन जिसको कैंसर शोध का अमेरिकी संगठन कहा गया, ने राष्ट्रपति टाफ्ट को इस बात के लिए मना लिया कि वे कांग्रेस के सामने कैंसर शोध के लिए राष्ट्रीय प्रयोगशाला की स्थापना का प्रस्ताव रखेंगे। इसमें कुछ प्रारंभिक रुचि दिखाई गई तथा थोड़े से अनियमित प्रयासों के बाद ये प्रयास वाशिंगटन में ठिठक गए। इसका मुख्य कारण राजनीतिक इच्छाशक्ति का न होना था।

1920 के दशक के आखिर में या टाफ्ट द्वारा प्रस्ताव को चर्चा में लाने के 10 साल बाद कैंसर शोध को एक अप्रत्याशित उत्साहित पक्षधर मिला– यह वेस्ट वर्जीनिया के फेयरमोंट का एक दृढ़ निश्चयी व प्रफुल्लित भूतपूर्व वकील मैथ्यू नीलि था, जो अपना पहला कार्यकाल सीनेट में पूरा कर रहे थे। यद्यपि नीलि को विज्ञान की राजनीति का अनुभव कम था फिर भी उन्होंने पिछले दशक में कैंसर से होने वाली मौतों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि की ओर संकेत किया, जो कि 1911 के 70 हजार से 1927 तक बढ़कर 1 लाख पंद्रह हजार पर पहुंच गई थी। नीलि ने कांग्रेस से कहा कि वह ऐसा विज्ञापन प्रसारित करें जिसमें किसी भी कैंसर संबंधी इलाज के उपाय की सूचना देने पर 50 लाख डॉलर का इनाम हो।

यह एक बेतुकी रणनीति थी– जैसे पुलिस के दफ्तर में अपराधियों की फोटो टांग के उनके बारे में इनाम घोषित कर देना, परिणामतः उसी तरह की बेतुकी प्रतिक्रियाएं भी आई। एक ही सप्ताह में हजारो अधकचरे डॉक्टरों व ओझाओं के पत्र आए जिनमें कैंसर के इलाज का सुझाव थाः इन सुझावों में मालिश, टॉनिक, मरहम, धार्मिक रूमाल या लेपने वाला पदार्थ अथवा मंत्रित जल से इलाज करने का सुझाव था। प्रतिक्रियास्वरूप कांग्रेस ने नीलि के कैंसर रोधी विधेयक के लिए 50 हजार डॉलर स्वीकृत किए जो कि हास्यास्पद रूप से मांगी गई रकम का मात्र एक प्रतिशत था।

1937 में जुझारू नीलि फिर सीनेट के लिए चुने गए। फिर उन्होंने सीनेटर होमर बोन व रिप्रजेन्टेटिव बॉरेन मगनुसन के साथ मिलकर पुनः प्रयास शुरू किया। अब तक कैंसर पर आम लोगों का ध्यान भी आ चुका था। 'द फार्च्यून' व 'टाईम' पत्रिका के आलेखों ने लोगों की उत्सुकता व असंतोष को हवा दे दी फलस्वरूप राजनीतिज्ञ ठोस कदम उठाना चाह रहे थे। जून में इस समस्या के समाधान के लिए सीनेट व हाऊस का संयुक्त सम्मेलन, कानून का ढांचा बनाने के लिए बुलाया गया। प्रारंभिक विचार के बाद कांग्रेस ने जल्द ही संयुक्त अधिवेशन में 23 जुलाई 1937 को प्रस्ताव पास कर दिया। दो सप्ताह बाद 5 अगस्त को राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने नेशनल कैंसर इंस्टीट्यूट एक्ट पर हस्ताक्षर किए।

इस एक्ट के परिणामस्वरूप 'नेशनल कैंसर इंस्टीट्यूट' अस्तित्व में आया, जिसका उद्देश्य कैंसर संबंधी शोध एवं शिक्षा को संचालित करना था।[22] कई विश्वविद्यालयों व अस्पतालों से वैज्ञानिकों की एक सलाहकार समिति बनाई गई। राष्ट्रीय राजधानी से कुछ मील की दूरी पर बेथेस्ट्रा उपनगर में, अत्याधुनिक प्रयोगशाला भवन बनाया गया जिसमें भव्य सभागार थे। यह प्रयोगशाला बाग–बगीचों व उद्यानों के मध्य थी। 3 अक्टूबर 1938 को इस संस्थान की आधारशिला रखते हुए सीनेटर बोन ने आश्वस्तिपूर्ण शब्दों में घोषणा की "राष्ट्र कैंसर को फतह करने के लिए अपनी शक्तियों को क्रमबद्ध कर रहा है जो कि अभी तक के इतिहास में मानव जाति को आतंकित करने वाला महानतम अभिशाप है।" तकरीबन दो दशकों के प्रयासों जिनमें अधिकतर असफल थे, के बाद, अंततः समन्वित राष्ट्रीय प्रयास संभव हो पाए।

ये सब सही दिशा में एक सटीक एवं निर्भीक कदम थे सिवाय इसके कि ये देर से हो रहे थे। 1928 के जाड़े की शुरुआत तक, बेथेस्दा में एनएसीआई के उद्घाटन के कुछ ही महीनों बाद, कैंसर के विरुद्ध, लड़ाई गौण हो गई। क्योंकि नवंबर में नाजी दस्तों ने जर्मनी में यहूदियों के खिलाफ राष्ट्रव्यापी जनसंहार शुरू कर दिया था। परिणामतः हजारों यहूदी प्रताड़ना शिविरों में ठूंस दिए गए। जाड़ा समाप्त होने से पहले संपूर्ण एशिया और यूरोप में सैन्य टकराव शुरू हो गए जिसने द्वितीय विश्वयुद्ध की रूप रेखा तैयार कर दी। 1939 तक ये झड़पे अपने शवाब पर थी, और

---

[22] 1944 में एनसीआई, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ एनएचआई का सहायक बना और उसने आने वाले दशकों में बीमारी–विशेष के संस्थानों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया।

दिसंबर 1941 में, अमेरिका को भी इस अग्निकांड में कूदना पड़ा।

इस युद्ध ने नाटकीय तरीके से प्राथमिकताओं को उल्टा–पुल्टा कर दिया। बाल्टीमोर में स्थित संयुक्त राष्ट्र नौसैनिक अस्पताल, जिसे एनसीआई कैंसर चिकित्सा केंद्र में बदलना चाहता था, को तुरंत युद्ध अस्पताल में बदल दिया गया। वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए निर्धारित निधि स्थिर हो गई और इसको मोड़कर युद्ध संबंधी परियोजना से जोड़ दिया। वैज्ञानिक, प्रचारक, फिजीशियन, सर्जन आदि पर जनता का ध्यान नहीं गया तथा वे भी चुप ही रहे। जैसा कि एक शोधकर्ता याद करते हुए कहता है कि "इन लोगों का योगदान केवल मृत्युलेख में ही रहा।

इस तरह का एक मृत्यु लेख शायद एनसीआई के लिए भी लिखा जा चुका। कांग्रेस ने फंड का वादा किया था कैंसर के उन्मूलन के लिए लेकिन वह कभी हो नहीं पाया और एनसीआई की सुध नहीं ली गई। एनसीआई के पास 1940 में सोची जा सकने वाली सभी चीजें थीं। इस संस्था का चमचमाता हुआ प्रांगण भुतहा इमारत में तब्दील हो गया। एक वैज्ञानिक मजाकिया लहजे में बताता है "उन दिनों यह जगह एक बेहद सुकून देने वाली थी, और यहां की हवादार व खुली खिड़कियों में झपकी लेना खुशनुमा था।[23] सामान्य जनता का कैंसर को लेकर जो गुस्सा था, उसने रास्ता बदल लिया। जब प्रेस में इस बात की कुछ चर्चा की गई तो कैंसर फिर से अनुल्लेखनीय और ऐसी बीमारी बन गई जिसके बारे में लोग खुलकर बातें नहीं करते थे। 1950 के दशक की शुरुआत में स्तन कैंसर से बच चुकी फेनी रोजनोव ने 'द न्यूयॉर्क टाइम्स' से बात की कि वह स्तन कैंसर से पीड़ित महिलाओं के सहायता समूह का प्रचार अपने अखबार के माध्यम से करे। रोजनोव ने संपादक से भी बात की। जब उसने संपादक से अपनी सूचनार्थ बात की तो संपादक एक लंबी चुप्पी साध गया, फिर बोला "मुझे माफ कीजिए रोजनोव जी 'टाइम्स' 'स्तन' अथवा 'कैंसर' शब्द को अपने पृष्ठों पर जगह नहीं दे सकता।"

'शायद' संपादक ने कहा होगा कि "आप ये कह सकती हैं कि छाती की बीमारियों को लेकर एक मीटिंग बुलाई जाए।"

---

[23] 1946–47 में नीलि व सीनेटर क्लाउड पेपर ने एक नेशनल कैंसर बिल प्रस्तुत किया जो कुछ ही अंतर से पास नहीं हो सका।

रोसानोव ने उक़ताकर इसको छोड़ दिया।

जब फार्बर ने 1947 में कैंसर की दुनिया में प्रवेश किया तब तक पिछले दशक का जनता का गुस्सा कम हो चुका था। कैंसर राजनीतिक रूप से शांत बीमारी में बदल चुका था। चिल्ड्रेन्स हॉस्पिटल के हवादार वार्डों में चिकित्सक और मरीज कैंसर से जूझते रहे। सीढ़ियों के नीचे एक सुरंग में अपनी प्रयोगशाला में फार्बर रसायनों और प्रयोगों के साथ कहीं अधिक अकेले जूझे।

यह अकेलापन फार्बर की प्रारंभिक सफलताओं की कुंजी था आम लोगों की पूछताछ से बचते हुए उन्होंने छोटी और अधूरी पहेली को सुलझाया। ल्यूकेमिया एक लाइलाज बीमारी थी, यह इंटरनिस्ट[24] द्वारा त्याग दी जाती थी क्योंकि इसके लिए कोई दवा नहीं थी और सर्जन इसलिए छोड़ देते थे क्योंकि संभवतः खून का ऑपरेशन नहीं हो सकता। 'ल्यूकेमिया' जैसा कि एक फिजीशियन ने बताया "कुछ अर्थों में द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले तक इसकी गणना कैंसर में नहीं होती थी।" यह बीमारी कई बीमारियों की सीमा पर स्थिति थी, एक ऐसी बीमारी जो अपनी पहचान के लिए कभी इस विभाग में या उस व्यवस्था में रखी जाती थी जैसे कि स्वयं फार्बर संघर्ष करते रहे।

अगर ल्यूकेमिया का किसी से संबंध था तो वह रक्त–विज्ञान से था। फार्बर का ऐसा मानना था कि अगर इसका इलाज हो सकता था तो यह केवल रक्त–विज्ञान के अध्ययन द्वारा। अगर वे यह पता लगा लेते कि सामान्य रक्त कोशिकाएं कैसे उत्पन्न होती है तो संभवतः वे किसी तरह ल्यूकेमिया प्रभावित कोशिकाओं की वृद्धि को रोक लेते। तब उनकी रणनीति सामान्य से असामान्य की ओर अर्थात विपरीत दिशा से हमला करने की होती।

---

[24] ऐसा चिकित्सक जो ऑपरेशन नहीं करता।

जितना फार्बर सामान्य रक्त के बारे में जानते थे उसमें से अधिकांश उन्होंने जार्ज मिनॉट से सीखा था। मिनॉट पतले, गंजे, फीकी व गहन आंखों वाले, कुलीन व्यक्ति थे, जो लांगवुड एवेन्यू में प्रयोगशाला चलाते थे जो कि खंभे युक्त इमारत थी जिसमें ईंट व पत्थर का उपयोग किया गया था। चिल्ड्रेन हॉस्पिटल में कार्यभार संभालने से पहले 1920 के दशक में फार्बर ने हार्वर्ड के अन्य विशेषज्ञों की तरह मिनॉट से अल्पकालिक प्रशिक्षण लिया था।

सभी दशकों में अनूठी रक्त संबंधी पहेली उभरती रही है। मिनॉट के समय में वह पहेली घातक रक्ताल्पता (एनेमिया) थी। एनेमिया लाल रक्त कोशिकाओं की कमी का नाम है और इसका सबसे सामान्य रूप लौह तत्व की कमी से उभरता है जो कि लाल रक्त कोशिकाओं के निर्माण के लिए अत्यावश्यक पोषक तत्व है। लेकिन घातक एनीमिया, जिसके एक दुर्लभ प्रकार का मिनॉट ने अध्ययन किया था, का कारण लौह तत्व की कमी नहीं थी (वास्तव में इसका नाम इसके इलाज के तरीके से निकला था जिसमें लौह की मदद आवश्यक होती थी) अपने मरीजों को घिनौनी चीजें जैसे– आधा पाउंड का मुर्गी का कलेजा, अधपका हैम्बर्गर, सुअर के पेट का कच्चा भाग यहां तक कि एक छात्र की उल्टी से प्राप्त पदार्थ खिलाकर, मिनॉट व उनके शोधार्थियों के समूह ने 1926 में यह अंतिम रूप से बताया कि इस घातक एनीमिया का कारण एक जटिल सूक्ष्म पोषक तत्व की कमी है। इस एक अणु को बाद में विटामिन B_{12} कहा गया। 1934 में मिनॉट व उनके दो सहकर्मियों को इस नूतन कार्य के लिए नोबल पुरस्कार मिला। मिनॉट ने अपने काम से यह दिखाया कि एक अणु के स्थानांतरण से इस पेचीदा रक्त की बीमारी को सुलझाया जा सकता है तथा रक्त एक ऐसा अंग है जिसको अणुरूपी स्विच से बंद या चालू किया जा सकता था।

पोषकीय एनेमिया का एक ऐसा भी रूप मौजूद था जिसे मिनॉट तथा उनके साथी काबू में नहीं ला सके, जैसा कि इस घातक शब्द से प्रदर्शित होता है। यहां से आठ हजार मील दूर बंबई की कपड़ा मिलों में (जिसके मालिक अंग्रेज थे और जिनका संचालन स्थानीय बिचौलियों के द्वारा होता था) जहां मजदूरी इतनी कम थी कि मिल मजदूर कुपोषित थे तथा बिना किसी चिकित्सकीय सुविधा के दयनीय जीवन–यापन कर रहे थे। जब 1920 में अंग्रेज फिजीशियनों ने इन मिल मजदूरों की जांच की तो पाया कि उनमें से अधिकतर, खासकर औरतें, बच्चों को जन्म देने के बाद, भयानक रूप से एनेमिया की चपेट में थी। (अब यह उपनिवेशवाद का एक अन्य

पक्ष थाः जिसने एक बड़ी आबादी को गरीबी में धकेल दिया था और जिसको सामाजिक व चिकित्सकीय प्रयोगों की विषय वस्तु बनाया गया)।

1920 में लंदन स्कूल ऑफ मेडीसिन फॉर वूमैन से हाल ही में शिक्षित लूसी विल्स नाम की युवा फिजीशियन एक अनुदान पर इस एनीमिया का अध्ययन करने बंबई आई। विल्स अन्य प्रकार के रक्त विज्ञानियों से अलग थी। वह एक जोखिम पसंद करने वाली महिला थी जो जबर्दस्त कौतूहल से संचालित थी। उसकी इसी इच्छा ने उसको एक दूसरे देश जाकर एक रहस्यमयी एनेनिया से पर्दा उठाने को प्रेरित किया। वह मिनॉट के काम से परिचित थी। मिनॉट की एनेमिया की व्याख्या के विपरीत उसने पाया कि बंबई का एनीमिया, मिनॉट द्वारा घृणित चीजें खिलाने से या विटामिन B_{12} से खत्म नहीं हो सकेगा। आश्चर्यजनक रूप से उसने पाया कि वह ताजे खमीर के सत्व से ठीक कर सकने में सक्षम है, इस चीज को इंग्लैंड व आस्ट्रेलिया में व्यापक रूप में अच्छे स्वास्थ्य से संबंधित माना जाता था। लेकिन विल्स इस मरमाइट (खमीर का सत्व) के मूल रासायनिक पोषक तत्व का निर्धारण नहीं कर पाई थी। उसने विल्स सूत्र का नाम दिया।

विल्स सूत्र को फोलिक एसिड अथवा फोलेट के रूप में पहचाना गया। यह विटामिन जैसा पदार्थ था जो फलों और सब्जियों में पाया जाता है (जिसकी प्रचुरता खमीर के सत्व में होती है)। जब कोशिका विभाजन होता है तो ये (कोशिकाएं) डीएनए की प्रतिलिपि बनाती है। डीएनए ऐसा रसायन है जो आनुवंशिक जानकारी को कोशिका में ले जाता है। फोलिक एसिड, डीएनए निर्माण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है तथा इसलिए यह कोशिका विभाजन का आधार है। तार्किकतः, चूंकि बड़े पैमाने पर कोशिका विभाजन से, मानव शरीर में रक्त कोशिकाएं उत्पन्न होती हैं, एक दिन में लगभग तीन सौ बिलियन से भी ज्यादा कोशिकाओं का विभाजन होता है, इसलिए रक्त–निर्माण के लिए मुख्य रूप से फोलिक एसिड पर निर्भरता होती है। इसकी अनुपस्थिति में (स्त्री और पुरुष में सब्जियों की कमी से जैसा कि बांबे में था) अस्थि–मज्जा में नई रक्त कोशिकाओं का निर्माण रुक जाता है। इससे लाखों अर्द्धनिर्मित कोशिकाएं बाहर आकर एक के ऊपर इकट्ठी होने लगती है जिस तरह कारखाने में संयोजन करने की एक कड़ी खराब होने से अर्द्धनिर्मित चीजें इकट्ठा होने लगती हैं। उसी तरह अस्थि–मज्जा एक बेकार कारखाने में बदल जाती है, एक कुपोषित जीव विज्ञान का कारखाना जो आश्चर्यजनक रूप से बांबे की कपड़ा मिलों

की याद दिलाता है।

सामान्य रक्त, अस्थि मज्जा और विटामिन की इन श्रृंखलाओं ने 1946 की गर्मियों की शुरुआत में फार्बर को तल्लीन रखा। वास्तव में उनका पहला चिकित्सा संबंधी प्रयोग जो इन संबंधो की देन था, एक भयंकर गलती में बदल गया। लूसी विल्स ने यह प्रेक्षण किया था कि फोलिक एसिड यदि कुपोषित मरीजों को दिया जाए तो यह रक्त–निर्माण की प्रक्रिया को पुनः बहाल कर सकता है। फार्बर ने सोचा कि यदि ल्यूकेमिया पीड़ित बच्चों को फोलिक एसिड दिया जाए तो भी रक्त–निर्माण हो जाएगा। फार्बर इस अनिश्चित रास्ते पर चल पड़े, उन्होंने थोड़ा सा कृत्रिम फोलिक एसिड एकत्रित किया, कुछ ल्यूकेमिया पीड़ित बच्चों को लिया और उनमें फोलिक एसिड प्रवेश करा दिया।

कुछ महीनों के बाद फार्बर पाते हैं कि ल्यूकेमिया को रोकना तो बहुत दूर फॉलिक एसिड ने उसमें वृद्धि ही की। एक मरीज में सफेद रक्त कोशिकाएं लगभग दुगुनी हो गई। एक अन्य मरीज में ल्यूकेमिया प्रभावित कोशिकाएं खून में फटकर मिल गई थी और त्वचा से छनकर बाहर आ गई। फार्बर ने तुरंत अपने प्रयोग को रोक दिया। उन्होंने इसे एक त्वरित घटना कहा जिसने कि अंत होते–होते कुछ खतरनाक पहलुओं को उजागर किया।

चिल्ड्रेन्स हॉस्पिटल के बाल रोग विशेषज्ञ फार्बर के इस प्रयोग से भीषण क्रोध में आ गए। प्रतिफॉलेट (vit. B_9 का स्रोत) ने ल्यूकेमिया की केवल गति ही नहीं बढ़ाई संभवतः इसने मृत्यु को और भी करीब ला दिया। लेकिन फार्बर में इसने कौतूहल मिश्रित परेशानी को बढ़ाया। यह ठीक है कि फॉलिक एसिड ने बच्चों में ल्यूकेमिया की गति को बढ़ाया लेकिन अगर इसको न दिया तो वह क्या होता क्या एक *विपरीत* फालेट। उस दवा से यदि सफेद रक्त कोशिका पर लगाम लगती तो क्या उससे ल्यूकेमिया भी रुक जाता?

मिनॉट व विल्स के प्रेक्षणों से धुंधली तस्वीर उभरकर आई थी। अगर अस्थि–मज्जा को तेजी से कोशिका निर्माण का कारखाना कहें तो ल्यूकेमियायुक्त अस्थि–मज्जा भी तेजी से काम करेगी, एक कैंसर कोशिका पैदा करने वाली एक अस्त–व्यस्त इकाई। मिनॉट व विल्स ने शरीर में पोषक–तत्व देने को ही अस्थि मज्जा बनाने की शुरुआत माना। लेकिन क्या पोषक–तत्व नहीं देने से दूषित मज्जा भी बनना बंद हो जाएंगी? बांबे के कारखानों में स्थित मिल मजदूरों में होने वाली रक्त की कमी को क्या बोस्टन के अस्पतालों में बनाया जा सकता था?

फार्बर, चिल्ड्रेन हास्पिटल के नीचे स्थित अपनी प्रयोगशाला से ब्रुकलिन स्ट्रीट पर स्थित अपने घर की लंबी दूरी तय करने के दौरान लगातार इस तरह की दवा के बारे में सोचते थे। अपने घर में स्थित काली लकड़ी से घिरे कमरे में वे रात का खाना बहुत कम और कभी–कभी करते थे। उनकी पत्नी नोरमा एक संगीतज्ञ व लेखिका थी, जो ऑपेरा व कविताओं की बात करती थीः वहीं सिडनी शव परीक्षण, अपने प्रयोगों व रोगियों की। जब वे वापस अपने अस्पताल ज़ाते थे तो नोरना के पियानो की टनटनाहट उनको सचेत करती थी; कैंसर रोधी दवा को अस्तित्व में लाने के लिए उन्होंने इसकी प्रत्यक्ष परिकल्पना की, वे अति उत्साह के कारण इसको महसूस करते थे। लेकिन उनको पता नहीं था कि यह है क्या और इसको क्या संज्ञा दी जाए? कीमोथेरेपी शब्द आज जिस तरह अपना अर्थ रखता है यह पहले कभी कैंसररोधी दवा की भांति प्रयुक्त नहीं हुआ था।[25] "प्रति विटामिन" रूपी जिन चिकित्सकीय साधनों का सपना फार्बर ने देखा, जो कि उनकी परिकल्पना में सुस्पष्ट था, अस्तित्व में नहीं था।

तबाही मचाने वाले प्रयोग के लिए फार्बर को फोलिक एसिड की आपूर्ति, एक रसायनज्ञ व पुराने दोस्त येलाप्रगादा सुब्बाराव या जिनको उनके सहयोगी 'येल्ला'

---

[25] 1910 के दशक में न्यूयॉर्क में विलियम बी. कोली, जेम्स इविंग तथा अर्नस्ट कोडमैन ने हड्डी के ट्यूमर का इलाज जीवाणुओं से बने जहर से किया यह कोली का तथाकथित जहर था। कोली को कभी–कभी ही प्रतिक्रिया मिलती थी, लेकिन अप्रत्याशित प्रतिक्रिया शायद प्रतिरोध बढने के कारण मिली, लेकिन इस प्रतिक्रिया ने कभी भी कैंसर–विशेषज्ञों व सर्जनों का ध्यान आकृष्ट नहीं किया।

कहकर पुकारते थे, ने की थी। येल्ला कई क्षेत्रों में पथ प्रदर्शक थे, एक फिजीशियन से कोशिका के फिजियोलॉजिस्ट तथा एक ऐसा रसायनज्ञ, जो दुर्घटनावश जीव विज्ञान में आ गया था। उनकी शारीरिक यात्रा (बाह्य लक्षणों के उपचार के दौरान) की हताशा व जोखिमपूर्णता ने उनकी वैज्ञानिक यात्रा का पूर्वाभास दे दिया था। वे अनिच्छा तथा खाली जेब लेकर बोस्टन 1923 में पहुंचे। उन्होंने भारत में चिकित्सकीय प्रशिक्षण लेने के बाद हार्वर्ड स्थित स्कूल ऑफ ट्रॉपिकल हेल्थ में डिप्लोमा लेने, शोधवृत्ति की सहायता से आए थे। येल्ला ने पता लगाया कि बोस्टन के मौसम व विषुवतीय मौसम में कोई समानता ही नहीं है। जमा देने वाले और तूफानी मौसम में कोई चिकित्सकीय नौकरी न मिल सकी (उनके पास यू.एस. में डॉक्टरी करने का लाइसेंस नहीं था) उन्होंने रात में ब्रिघम में पल्लेदारी तथा स्त्रियों के अस्पताल में दरवाजे खोलने, चादर बदलने तथा पेशाबघर साफ करने का काम किया।

दवा से उनकी नजदीकी काम आई। सुब्बाराव ने अस्पताल में मित्र और संबंध बनाए तथा जैवरसायन विभाग में दिन की नौकरी एक शोधकर्ता के रूप में आरंभ कर दी। उनका प्रारंभिक कार्य जीवित कोशिकाओं से अणुओं को छानना था तथा रसायन की सहायता से उसकी चीरफाड़ करनी थी ताकि उसके घटकों का पता चल सके– सारतः बोलें, तो वे कोशिकाओं का "जैव रासायनिक" "शवपरीक्षण" किया करते थे। कल्पना की अपेक्षा इस काम में अधिक दृढ़ता की आवश्यकता थी। लेकिन इस सबका उनको उल्लेखनीय लाभ मिला। सुब्बाराव ने एटीपी नाम का अणु परिष्कृत किया जो कि सभी जीवित वस्तुओं में ऊर्जा का स्रोत होता है (कोशिका में स्थित एटीपी में रसायन "ऊर्जा" होती है) तथा एक अन्य क्रियेटिन नाम का अणु भी था जो मांसपेशी की कोशिकाओं का ऊर्जा वाहक है। इनमें से एक भी उपलब्धि उनको हार्वर्ड का प्रोफेसर बनाने के लिए पर्याप्त थी। लेकिन सुब्बाराव एक विदेशी, न घुलने–मिलने वाले, रात में भ्रमण करने वाले, स्वराघात से बोलने वाले, शाकाहारी थे जो एक कमरे वाले मकान में शहर के व्यापारिक केंद्र में रहते थे। उनके फार्बर जैसे मित्र बने जो खुद रात में घूमने वाले एकांतिक थे। 1940 में पहचान व काम दोनों, नहीं होने के कारण उन्होंने तंग आकर उपनगरीय इलाके में स्थित दवा का अनुसंधान करने वाली प्रयोगशाला लेडरल लैब में नौकरी कर ली जो कि अमेरिकन साइनामिड कारपोरेशन द्वारा संचालित थी। जहां वे रसायन संश्लेषण का समूह चलाते थे।

ले़डरल में, सुब्बाराव ने अपनी पुरानी रणनीति को पुर्नव्यवस्थित किया तथा जो प्राकृतिक रसायन उन्होंने कोशिका के अंदर पाया था उसका कृत्रिम रूप बनाने पर ध्यान केंद्रित किया। ऐसा इस उम्मीद के साथ किया कि इसको अनुपूरक पोषक के रूप में प्रयोग किया जा सके। 1920 के दशक में एक और दवा कंपनी इली लिली ने विटामिन B_{12} का सांद्र रूप बनाया जिसने इस कंपनी का भाग्य चमका दिया क्योंकि यह पोषक तत्व घातक एनेमिया में लुप्त हो जाता था। सुब्बाराव ने फोलेट एनेमिया जैसे उपेक्षित एनेमिया पर ध्यान केंद्रित किया। लेकिन 1946 में, सुअर के यकृत से रसायन निकालने के कई असफल प्रयासों के बाद उन्होंने अपना तरीका परिवर्तित किया और बिना किसी पूर्व ज्ञान के उन्होंने फॉलिक एसिड का संष्लेषण शुरू कर दिया। इसमें उनकी सहायता लेडरल के एक युवा दवा विक्रेता हैरेट किल्टी समेत वैज्ञानिकों के एक दल ने की।

फोलिक एसिड बनाने के लिए की गई रासायनिक प्रतिक्रियाओं ने अनपेक्षित व अतिरिक्त लाभ दे दिया। इन प्रतिक्रियाओं के आरंभ से ही कई चरण थे, सुब्बाराव व किल्टी को कई प्रकार के फोलिक एसिड थोड़े–थोड़े परिवर्तन से प्राप्त हो गए। इन कई प्रकार के फोलिक एसिड में निकटतम आण्विक समानता थी लेकिन आंतरिक गुणों में भिन्नता थी। कोशिका के अंदर के विकर और ग्राही अपनी रासायनिक संरचना का प्रयोग करके कोशिकाओं में विशिष्ट रूप के अणुओं को पहचान के काम करते हैं। लेकिन एक "प्रलोभन देने वाली" आण्विक संरचना– जो कि प्राकृतिक अणुओं जैसी होती है– विकर और ग्राही को संयुक्त कर सकती है तथा उनकी क्रिया को रोक सकती है, जैसे एक गलत चाबी ताले को जाम कर देती है। येला के कुछ आण्विक समदर्शी इस प्रकार फोलिक एसिड के विपरीत व्यवहार करते हैं।

ये सब प्रतिविटामिन थे जिनके बारे में फार्बर परिकल्पना करते रहते थे। फार्बर ने किल्टी व सुब्बाराव को लिखकर यह पूछा कि वे ल्यूकेमिया से ग्रस्त मरीजों पर उनके प्रति फॉलेट का प्रयोग कर सकते हैं। सुब्बाराव ने सहमति दे दी। 1947 की गर्मियों के अंत में प्रतिफॉलेट का पहला पार्सल न्यूयॉर्क की लेडरले प्रयोगशाला से फार्बर की प्रयोगशाला में पहुंच गया।

फार्बर का सुरक्षा कवच

शताब्दियों से इस बीमारी से पीड़ित मरीजों पर सभी तरह के संभव प्रयोग किए जा चुके हैं। जंगलों व मैदानों को, मंदिरों से लेकर दवा की दुकानों तक सबको छाना गया ताकि इस अड़ियल बीमारी से कुछ चैन मिल जाए। शायद ही कोई जानवर ऐसा होगा जिसके बाल व खाल में, दांत व पंजे के नाखूनों में, थाइमस ग्रंथि या थायराइड ग्रंथि, यकृत या उसकी तिल्ली में, उसकी नसों में मनुष्य ने यह चैन न खोजा हो।

– विलियम बेन ब्रिज

इस उजाड़ देने वाली बीमारी के उन्मूलन की खोज के तरीके आकस्मिक प्रयासों व गैर समन्वित शोधों के भरोसे छोड़ दिए गए।

– द वाशिंगटन पोस्ट, 1946

बोस्टन में लांगवुड अस्पताल से सात मील दक्षिण में डोरचेस्टर नामक कस्बा न्यू इंग्लैंड का ठेठ उपनगरीय इलाका है। यह तीन तरफ से पच्चर की भांति अटका है। इसके दूसरी तरफ, पश्चिम में सूटी व्यावसायिक क्षेत्र तथा पूरब से स्लेटी हरी अटलांटिक की खाड़ियां हैं। 1940 के दशक के अंत में यहूदी और आयरिश प्रवासियों, जिनमें लोहे के कारीगर, जहाज निर्माता, रेल अभियंता, मछुआरे तथा कारखाना मजदूर थे, के एक जत्थे ने डोरचेस्टर में रिहायश बना ली। इन लोगों ने ब्लूहिल अवेन्यू तक फैली ईंटों व क्लैपबोर्ड से बने घरों की घुमावदार कतारों में कब्जा कर लिया था। डोरचेस्टर का अपने आप से पुर्नगठन एक उत्कृष्ट उपनगरीय पारिवारिक कस्बे की तरह हो गया था क्योंकि इसके साथ उद्यान व खेल के मैदान के अलावा नदी, गोल्फ का मैदान, गिरिजाघर, और एक यहूदियों का उपासना स्थल भी था। रविवार की दोपहर फ्रैंकलिन पार्क की तरफ कई परिवार पत्तों भरे मार्ग पर टहलने

अथवा इसके चिड़ियाघर में मौजूद शुतुरमुर्ग, ध्रुवीय भालू और चीतों को देखने आते थे।

16 अगस्त 1947 को, चिड़ियाघर के उस पार स्थित बोस्टन यार्ड में काम करने वाले जहाज कर्मचारी का बच्चा रहस्यमयी तरीके से निम्न–ताप के बुखार के कारण बीमार हुआ। यह बुखार बिना किसी स्वरूप के चरणबद्ध रूप में दो हफ्तों तक रहा साथ ही आलस्यपन व पीलापन बढ़ता रहा। राबर्ट सैंडलर दो साल का था। उसका जुड़वा भाई इलियट तंदुरुस्त व फुर्तीला, देवदूतों के बच्चों जैसा था।

पहली बार बुखार आने के 10 दिनों के बाद राबर्ट की हालत बदतर होती चली गई। उसका बुखार ऊंचा होता गया। उसके चेहरे का रंग गुलाबी से भुतहा दूधिया हो गया। इसको बोस्टन के चिल्ड्रेन्स हास्पिटल लाया गया। उसकी प्लीहा, एक मुट्ठी के आकार का अंग, जो कि खाने का संग्रहण व खून का निर्माण करता है (सामान्यतः कम दिखने वाला पसलियों के ढांचे के नीचे) एक बुरी तरह भरे हुए बैग की भांति साफ–साफ उठा हुआ था। फार्बर की सूक्ष्मदर्शी ने एक बूंद खून से उसकी बीमारी का खुलासा कर दिया; हजारों अपरिपक्व लिम्फोयॉइड ल्यूकेमिक कोशिकाएं ताबड़तोड़ बन रही थी। उनके गुणसूत्र जमते और फैलते थे जैसे कोई छोटी सी मुट्ठी बार–बार खुलती व बंद होती है।

फार्बर के द्वारा लैडरेल से पार्सल प्राप्त करने के कुछ हफ्तों बाद ही सैंडलर चिल्ड्रेन्स हॉस्पिटल पहुंच गया था। 6 सितंबर 1947 को, फार्बर ने लैडरल के पहले प्रतिफोलेट, पेट्रोलसपार्टिक एसिड या पीएए को सैंडलर में प्रवेश कराया। (किसी दवा के चिकित्सकीय परीक्षण के लिए सहमति– चाहे वह हानिकारक दवा ही क्यों न हो– आवश्यक नहीं थी। माता–पिता को कभी–कभार सरसरे तौर पर इस परीक्षण की जानकारी दे दी जाती थी, बच्चों से तो शायद कभी पूछा ही नहीं गया था। मानव प्रयोगों के लिए न्यूरेम्बर्ग संहिता ने मरीजों को स्पष्ट स्वैच्छिक सहमति को आवश्यक बना दिया था, इसका मसौदा पीएए परीक्षण के मात्र एक महीने पहले ही तैयार हुआ था। इसमें संदेह ही है कि बोस्टन में फार्बर ने उस आवश्यक सहमति संहिता के बारे में सुना भी हो)।

पीएए ने थोड़ा प्रभाव डाला। अगले एक महीने में सैंडलर का आलस्यपन बढ़ता ही गया। ल्यूकेमिया के परिणामस्वरूप उसकी रीढ़ की हड्डी नीचे खिसक गई

तथा वह चल भी नहीं पा रहा था। जोड़ों की कसक चरम पर थी तथा दर्द संचरणशील था और तब उसकी जांघ की एक हड्डी में ल्यूकेमिया फट गया। इस कारण एक दरार सी पड़ गई और भयानक, असहनीय व अवर्णनीय दर्द का जन्म हुआ। दिसंबर में यह प्रकरण आशाहीन हो चुका था। ल्यूकेमिया कोशिका का अभी तक का सबसे संघनित रूप उसके प्लीहा में दिख रहा था जो कि उसके पेढ़ू तक आ पहुंचा था। वह पीले, फूले हुए शरीर के साथ अलग–थलग और आशाहीन शरीर के साथ मृत्युशय्या पर था।

यद्यपि फार्बर ने 28 दिसंबर को सुब्बाराव व किल्टी से एक अलग तरीके का अमीनोप्टेरिन नामक प्रतिफॉलेट लिया, जो कि पीएए से कदाचित भिन्न था। जैसे ही फार्बर को दवा मिली उन्होंने बच्चे के शरीर में इस आशा से प्रवेश करा दिया कि मरीज को कुछ राहत मिलेगी।

प्रतिक्रिया उल्लेखनीय थी। सफेद रक्त कोशिकाओं की संख्या जो कि निरंतर बढ़ रही थी– सितंबर में दस हजार, नवंबर में बीस़ हजार तथा दिसंबर में लगभग सत्तर हजार हुई, अचानक से बढ़नी बंद हो गई तथा इसी संख्या के आसपास स्थिर हो गई। उसके बाद एक अनूठी चीज अस्तित्व में आई कि यह संख्या घटनी शुरू हो गई तथा रक्त में ल्यूकेमिक कोशिकाएं कम–ज्यादा होने लगी और धीरे–धीरे खत्म होने लगी। नए साल की पूर्व संध्या पर सफेद रक्त कोशिका अपनी सर्वोच्च संख्या की लगभग 1/6 तक पहुंच गई थी जो कि सामान्य स्तर था। कैंसर विलुप्त नहीं हुआ था, क्योंकि सूक्ष्मदर्शी से अभी भी प्रभावित कोशिकाएं देखी जा सकती थी लेकिन यह संख्या अस्थायी रूप से घटी थी, बोस्टन की जमा देने वाली सर्दियों में यह संख्या भी जम गई।

13 जनवरी 1948 को, दो महीने में पहली बार सैंडलर दोबारा क्लीनिक में अपने पैरों पर चलकर आया। फार्बर ने महसूस किया कि उसके लीवर व प्लीहा में आश्चर्यजनक रूप से इतनी सिकुड़न आ गई थी कि पेढ़ू के पास के कपड़े ढीले पड़ गए थे। उसका रक्तस्राव रुक चुका था। उसकी भूख चरम पर थी। गोया कि पिछले छः महीने का भोजन एक साथ खा जाएगा। फरवरी तक फार्बर ने महसूस किया कि उसकी चपलता, पोषकता उसके जुड़वां भाई की तरह हो चुकी है। लगभग

एक महीने मे राबर्ट सैंडलर व इलियट सैंडलर एक जैसे दिखने लगे।

सैंडलर में किए गए सुधार जो ल्यूकेमिया के इतिहास में अभूतपूर्व थे, ने फार्बर की गतिविधियों को अचानक तेज कर दिया। 1949 की सर्दियों के प्रारंभ तक कई बच्चे उनके क्लीनिक में आए: तीन साल का लड़का जिसके गले में संक्रमण था, ढ़ाई साल की लड़की जिसके सिर व गर्दन में गांठ थी तथा ये सब एएलएल से पीड़ित पाए गए। प्रतिफोलट की अत्यधिक मांग फलतः अधिक जरूरत के कारण, फार्बर ने येला की मदद के लिए अतिरिक्त चिकित्सकों की सहायता ली: इनमें एक रक्त रोग विशेषज्ञ लुईस डायमंड तथा जेम्स वोल्फ, राबर्ट मर्सर और राबर्ट सिल्वेस्टर जैसे सहायकों का समूह था।

फार्बर के पहले प्रयोग से चिल्ड्रेन हास्पिटल के अधिकारी कुपित हो चुके थे। इस दूसरे चिकित्सकीय प्रयोग ने इन अधिकारियों को और उत्तेजित कर दिया। सारे अस्पताल के कर्मचारियों ने ल्यूकेमिया कीमोथेरेपी विभाग से सारे प्रशिक्षु सहायकों को हटा लेने का सुझाव दिया (ल्यूकेमिया वार्ड का माहौल, प्रयोगात्मक कार्यों के अनुकूल नहीं था इसलिए चिकित्सकीय ज्ञान में सहायक नहीं था, ऐसा महसूस किया गया था)– सारतः फार्बर और उनके सहायकों के जिम्मे सारे मरीजों को छोड़ दिया गया। जैसा कि एक सर्जन ने महसूस किया कि "कैंसर पीड़ित बच्चों को सुदूर कमरों में उपेक्षित छोड़ दिया जाता था।" इस तरह से वे अपनी मृत्यु शैय्या पर पहुंचे होते थे, कुछ बाल रोग विशेषज्ञों का विचार था उनको "शांतिपूर्ण तरीके से मरने देना।" अधिक दयालुपूर्ण व भद्र तरीका होगा। जब एक चिकित्साकर्मी ने सुझाव दिया कि फार्बर के अद्‌भुत 'रसायनों' को ल्यूकेमिया ग्रसित बच्चों के लिए आखिरी उम्मीद के तौर पर आरक्षित किया जाए। तो फार्बर ने अपनी पुरानी रोग विज्ञानी की जिंदगी को याद किया तथा वापस करारा जवाब देते हुए कहा कि "ऐसी स्थिति में जिस द्रव की जरूरत होगी वह केवल मृत्योपरांत उपयोग में आने वाला लेप होगा।"

फार्बर ने बाथरूम के पास वाले पिछले कमरे को अस्थाई चिकित्सालय बनाने के लिए कुछ उपकरण लगाए। उनके थोड़े से कर्मचारियों को पैथोलॉजी विभाग के कुछ अनुपयोगी स्थानों– पीछे का कमरा, सीढ़ी के नीचे का स्थान तथा खाली दफ्तरों में जगह दे दी गई। संस्थागत सहयोग न के बराबर था। फार्बर के सहायकों ने अपनी अस्थि–मज्जा निकालने वाली सुई को और ज्यादा तेज बनाया जिस तरह प्राचीन, सर्जन अपना चाकू तेज करते थे। फार्बर के कर्मचारियों ने मरीजों की मर्ज को संपूर्णता में देखाः प्रत्येक कोशिका की गणना, प्रत्येक रक्ताधान, प्रत्येक बुखार को दर्ज किया था। अगर ल्यूकेमिया पराजित होने वाला था तो फार्बर चाहते थे कि इस लड़ाई का प्रत्येक क्षण दर्ज किया जाए– चाहे इसे कोइ होते हुए देखना चाहे (या नहीं)।

1948 की उन सर्दियों में वोस्टन कड़ाके की घातक ठंड से घिरा हुआ था। बर्फीले तूफानों ने फार्बर के क्लीनिक को ठहरा दिया था। लोंगवुड एवेन्यू से बाहर जाने वाली संकरी तारकोल की सड़क कीचड़ मिश्रित ओलों से अंटी पड़ी थी तथा तलघर की सुरंग जो कि शरद ऋतु में भी गरम रहती थी अब जम रही थी। रोज–रोज के प्रतिफॉलेट के इंजेक्शन असंभव हो गए थे तथा फार्बर के सहयोगी एक सप्ताह में तीन बार ही देते थे। फरवरी में जब तूफान कुछ हल्का पड़ा तब पुनः प्रतिदिन इंजेक्शन चालू हुए।

इसी दौरान बच्चों के ल्यूकेमिया संबंधी फार्बर के अनुभव प्रसिद्ध होने शुरू हो गए थे तथा उनके क्लीनिक में बच्चों के आने का सिलसिला शुरू हुआ। कम से कम थोड़ी देर के लिए ही सही ल्यूकेमिया के मामले दर मामले अभूतपूर्व तरीके से आने लगे। प्रतिफॉलेट ल्यूकेमिया प्रभावित कोशिकाओं की संख्या घटा देता था कभी–कभी तो पूर्णतः खत्म ही कर देता था। सैंडलर के आश्चर्यचकित कर देने वाले सुधारों की तरह अन्य सुधार भी हो रहे थे। दो लड़के, जिनका अमीनोप्टेरिन से इलाज हुआ था वे स्कूल जाने लगे थे। एक अन्य ढ़ाई साल की बच्ची जो सात महीनों तक बिस्तर से चिपकी रही थी, ने "खेलना और दौड़ना शुरू" कर दिया था। पुनः रक्त के

लगभग सामान्य हो जाने से बचपन को सामान्य करने वाली एक आशा की किरण टिमटिमाने लगी थी।

लेकिन प्रत्येक चीज का एक काला पक्ष भी होता है। सुधार होने के कुछ माह पश्चात कैंसर पूर्वावस्था में पुनः आ गया। इस चीज की संभावना भी थी। कैंसर ने वापस आकर सभी खुशियों को यहां तक कि येला को शक्तिशाली दवा को भी ठोकर मारकर दरकिनार कर दिया। प्रभावित कोशिकाएं पुनः अस्थि–मज्जा में वापस लौट गई, फिर रक्त में बुरी तरह फैल गई, यहां तक कि सबसे ज्यादा प्रभावशील प्रतिफॉलेट भी इसकी वृद्धि को रोक नहीं पाया। कुछ महीनों तक संघर्ष करने के बाद 1948 में सैंडलर की मृत्यु हो गई।

सुधार अस्थाई अवश्य थे, लेकिन ये ऐतिहासिक रूप से महसूस भी किए जा रहे थे। अप्रैल 1948 तक पर्याप्त आंकड़े तैयार कर लिए गए थे जिससे *'न्यू इंग्लैंड जर्नल ऑफ मेडिसिन'* के लिए प्रारंभिक शोध–पत्र तैयार किए जा सके। उनके समूह ने 16 मरीजों का इलाज किया था। इनमें से 10 ने प्रतिक्रिया व्यक्त की। प्रारंभिक समूह के लगभग 43 अर्थात 5 बच्चे, चार या कहें कि छः महीने तक बीमारी का पता चलने के बाद जीवित रहे। ल्यूकेमिया में मात्र 6 महीने का जीवन कई युगों के समान होता था।

फार्बर का शोध–पत्र, 3 जून 1948 को प्रकाशित हुआ, जो कि सात पेज का था। ये पेज सारणियों, आंकड़ों, सूक्ष्मदर्शी चित्रों, प्रयोगशालाओं के मान तथा रक्त कोशिकाओं की गणना से भरे पड़े थे। इसकी भाषा कसी हुई औपचारिक, वैज्ञानिक और पृथक थी। इसके बावजूद अन्य महान शोध पत्रों की तरह यह उत्सुकतापूर्ण था तथा अन्य अच्छे उपन्यासों की भांति यह समय को भुला देने वाला था : आज के समय में इसको पढ़ना बोस्टन के क्लीनिक के आपाधापी भरे माहौल में जाने जैसा है; जहां मरीज जिंदगी के लिए जूझ रहे हैं जबकि फार्बर और उनके सहयोगी कैंसर जैसी आतंक फैलाने वाली बीमारी, जो कम–ज्यादा हो रही थी, के लिए नई दवा,

खोजने के लिए कमरतोड़ मेहनत कर रहे थे। यह एक ऐसी कथावस्तु है जिसका प्रारंभ है, मध्यांतर है और दुर्भाग्य से एक अंत भी।

इस शोध–पत्र के बारे में जैसा कि एक वैज्ञानिक याद करते हैं, "संदेहास्पद, अविश्वासपूर्ण एवं कड़ी प्रतिक्रियाएं मिली" लेकिन फार्बर के लिए यह अध्ययन लुभावक था.... जब कैंसर सबसे घातक रूप में था तब इसका इलाज एक दवा से किया जो एक रसायन था। 1947 से 1940 के बीच के छः महीनों में इस तरह से फार्बर को एक लुभावक एवं अल्पकाल के लिए खुला हुआ दरवाजा दिखाई पड़ा जो कि फिर से कसकर बंद हो गया। इस अल्पकाल में फार्बर को एक आशा की किरण दिख गई थी क्योंकि पूरे तंत्र को प्रभावित करने वाले कैंसर का एक रसायन के द्वारा विलुप्त हो जाना कैंसर के इतिहास में अद्वितीय था। 1948 की गर्मियों में जब फार्बर के एक सहायक ने ल्यूकेमिया प्रभावित बच्चे की अस्थि–मज्जा की बायोप्सी अमीनोप्टेरिन इस्तेमाल करने के बाद की, तो सहायक को इसके परिणाम का विश्वास ही नहीं हुआ।' "अस्थि–मज्जा बिल्कुल सामान्य थी" वे लिखते हैं, इतनी सामान्य कि "कोई उसके ठीक हो जाने का सपना देख सके।" ऐसा ही सपना फार्बर ने देखा। उन्होंने देखा कि एक विशिष्ट कैंसररोधी दवा के द्वारा दूषित कोशिकाओं को समाप्त किया जा रहा है, सामान्य कोशिकाएं पुनः बन रही हैं तथा अपना भौतिक अस्तित्व दोबारा से प्राप्त कर रही हैं उन्होंने देखा सभी पहलुओं वाले प्रतिरोधकों का एक विस्तारित समूह जो प्रदूषित कोशिकाओं को मिटा सके, उन्होंने देखा ल्यूकेमिया को रसायनों से ठीक करना, और तब अपने इस अनुभव को अन्य प्रकार के कैंसरों पर प्रयोग करना। उन्होंने ऐसा अस्त्र विकसित कर दिया था जो डॉक्टरों व वैज्ञानिकों की आने वाली पीढ़ी पर निर्भर था कि वे इसे किस तरह इस्तेमाल करें।

वैयिक्तक महामारी

हम खुद को तो रूपकों में दिखाते हैं लेकिन हमने विस्तृत ब्राह्मंड को लघु चित्र में चित्रित किया।

– स्टीफन जे गुड

इस प्रकार, 3000 साल या उससे भी ज्यादा समय से यह व्याधि चिकित्सा–व्यवसाय के लिए जानी–पहचानी है और 3000 साल या उससे भी ज्यादा समय से मानवता चिकित्सा–व्यवसाय के दरवाजों की तरफ "छुटकारे" के लिए देख रही है।

– *फॉर्च्यून*, मार्च 1937

अब कैंसर की बारी ऐसा रोग बनने की है कि जो बिना दस्तक दिए प्रवेश करती है।

– सुसेन सोन्टेग, *इलनेस एज मेटाफर*

हम कैंसर को एक "आधुनिक" बीमारी समझते हैं क्योंकि इसके लक्षण आधुनिक हैं। यह अति उत्पत्ति की विस्फोटक वृद्धि की बीमारी है– न रुकने वाली वृद्धि, ऐसी वृद्धि जो निर्बंधता की अतल गहराई में डूबी है। आधुनिक जीव विज्ञान हमको प्रोत्साहित करता है कि हम एक आण्विक मशीन की तरह कोशिका को देखें। कैंसर वह मशीन है जो अपने आप पर नियंत्रण खो देती है (वृद्धि पर)। और इस प्रकार एक स्वचालित और अनश्वर यंत्र में परिवर्तित हो जाती है।

कैंसर की धारणा एक वेदना है जिसका निदर्शन 20वीं सदी में होने लगा था जो कि आज प्रत्यक्ष है, जैसा कि प्रभावशाली ढंग से सुसेन सोन्टेग ने अपनी पुस्तक 'इलनेस एज मेटाफर' में बताया है, एक ऐसी बीमारी जो किसी अन्य युग की प्रतीक है जैसे 19वीं सदी की प्रतीक टीबी थी। सोन्टेग इसको सुव्यवस्थित तरीके से बताते हैं कि दोनों बीमारियां 'बराबर'' मनहसू इस शब्द को और स्पष्ट करें तो 'अशुभ, घिनौनी तथ इंद्रियों के लिए वितृष्णा उत्पन्न करने वाली' हैं। दोनों जीवंतता को चूस लेती है, दोनों मृत्यु से निश्चित होने वाले साक्षात्कार को लंबा बना देती है, दोनों मामलों में मरना मरने से ज्यादा कठिन होता है, इस बीमारी की यही परिभाषा है।

लेकिन ऐसी समानता के बावजूद टीबी का संबंध अन्य सदी से है। टीबी (Consumption) विक्टोरियन युग की स्वच्छंदता थी जो व्यक्ति को चिकित्सकीय चरम के समांतर ले आई थी (उसी तरह के चिन्ह) – बुखार जैसा चढ़ना, नैरंतर्य, बेचैनी तथा जुनून। यह कवियों की बीमारी थीः जॉन कीट्स शांतिपूर्वक एक छोटे से कमरे में रोम की पवित्र स्पेनिश सीढ़ियों को निहारते हुए मृत्यु के करीब खिसकते रहे अथवा बायरन, सनकीपन की हद तक स्वच्छंदतावादी, जिसने बीमारियों से होने वाली मृत्यु की कल्पना अपनी प्रेमिकाओं को खुश करने के लिए की। थोरिओ ने 1852 में लिखा ''मौत और बीमारी प्रायः सुंदर होती है, जैसे टीबी के कारण आ जाने वाली चमक।'' थॉमस मान के 'द मैजिक माउंटेन' में यह ''आने वाली चमक'' रोगियों में एक लगातार बढ़ने वाली शक्ति देता है। यह स्पष्ट होने वाली, उन्नत करने वाली तथा विरेचित करने वाली शक्ति भी, उसके अपने युग की विशेषता प्रतीत होती है।

इसके विपरीत कैंसर समकालीन समय में और रहस्यमयी हो गया है। कैंसर कोशिका उग्र व्यक्तिवादी है, जैसा कि सर्जन कम लेखक सेरविन नूलैंड ने लिखा है कि ''सभी मायनों में यह अलग राह का मुसाफिर है।'' 'मेटास्टासिस' शब्द जो कैंसर की शरीर से गतिशीलता को व्याख्यायित करने के लिए प्रयुक्त होता है– 'मेटा' और 'स्टासिस' शब्दों का एक अनोखा मिश्रण है जिसका लैटिन में आशय है– 'स्थिरता से परे' एक ऐसी बीमारी जिसको बांधा नहीं जा सकता, आंशिक रूप से अस्थाई अवस्था है जो आधुनिकता की अनोखी अस्थिरता के समान होता हैं यदि टी.बी. ने अपने शिकार को खोखला करके मारा (ट्यूबर कुलोसिस बैसीलस फेफड़ों को खोखला कर देता है) तो कैंसर शरीर की कोशिकाओं से भरकर मार देता है; दूसरे शब्दों में कहें तो टीबी रोग विज्ञान की ज्यादती है। कैंसर एक प्रसारवादी विकार है जो ऊतकों के

जरिए घुसपैठ करता है, अपना उपनिवेश प्रतिकूल स्थितियों में बना लेता है तथा एक अंग में आश्रय–स्थल खोजकर दूसरे की तरफ बढ़ जाता है। यह अदम्य जिजीविषा से भरे खोजकर्ता के रूप में, उग्र होकर सीमाएं निर्धारित करके और रक्षात्मक तरीके से जीवन गुजारता है जैसे हमको (समस्त मानवों) जीवन जीने की सीख दे रहा हो। कैंसर का सामना करना एक अपने जैसी जाति से सामना करना है जिनमें से वह, हमारी (मानव की) तुलना में कहीं अधिक, जीने के लिए अनुकूलन करती है।

कैंसर की खतरनाक, बुरी नीयत वाली, समकालीन भुतही छवि–बहुत भयानक तरीके से परेशान करने वाली इसलिए है क्योंकि ये सत्य भी है। एक कैंसर कोशिका सामान्य कोशिका की विकृति है। कैंसर एक संकल्पित सफल घुसपैठिया है तथा अंगों में पैठ बनाने वाला उपनिवेशवादी हैं क्योंकि यह मुख्य शक्ति का दोहन करता है जैसे 'हम' या हमारे अंग करते हैं।

सामान्य कोशिका की तरह कैंसर कोशिका मुख्यतः वृद्धि पर निर्भर रहती हैः एक कोशिका का विभाजित होकर दो अन्य का निर्माण करना। सामान्य ऊतकों में यह वृद्धि बेहतरीन तरीके से संचालित होती रहती है, इस तरह की वृद्धि विशेष संकेत देती है तथा दूसरे संकेतों को ग्रहण कर लेती है। कैंसर में अतियंत्रित वृद्धि कोशिकाओं की नई–नई पीढ़ियां पैदा करती है। जीव विज्ञानी इन कोशिकाओं (दोनों) को व्याख्यायित करने के लिए 'क्लोन' शब्द का प्रयोग करते हैं जिनके आनुवांशिक पूर्वज एक है। इस तरह हम जान पाते हैं कि कैंसर एक हूबहू प्रतिरूपक बीमारी है। लगभग सभी ज्ञात कैंसर, एक पूर्वज कोशिका से उत्पन्न होते हैं, जो असंख्य बार विभाजित होने तथा जीवित रहने की क्षमता से युक्त होते हैं, यह असंख्य वंशजों को पैदा करती है जैसा कि विरचो ने बताया "एक कोशिका से दूसरी कोशिका तथा दूसरी कोशिका से तीसरी कोशिका" इसी तरह से अनंत तक होती है।

लेकिन कैंसर केवल प्रतिरूप बनाने वाली बीमारी नहीं है बल्कि 'प्रतिरूपकों को विकसित करने वाली' बीमारी है। अगर वृद्धि में क्रमिक विकास नहीं होता है.... तो यह अपनी घुसपैठ करने, जीवित रहने तथा अस्थिर रहने जैसी शक्तियों को खो देती है। परिणामस्वरूप यह व्यापक नहीं हो पाती है। प्रत्येक पीढ़ी की कैंसर कोशिकाएं, एक कोशिकाओं का छोटा समूह पैदा करती है जो पैत्रक कोशिकाओं से आनुवांशिक भिन्नता लिए रहती है। जब कीमोथेरेपी की दवा या कैंसर प्रतिरोधी शक्ति कैंसर पर

प्रहार करती है तो उत्परिवर्ती प्रतिरूपकों में जो बच जाता है, उसमें वृद्धि होती है। सबसे दुरुस्त कैंसर कोशिका जीवित रहती है। इस उत्परिवर्तन के मनहूस व अनवरत चक्र के चयन व अत्यधिक वृद्धि से जो कोशिकाएं उत्पन्न होती है वे जीवित रहने व वृद्धि करने के लिए अधिक अनुकूलित होती हैं। कुछ मामलों में उत्परिवर्तन दूसरे उत्परिर्वतनों की रफ्तार को तेज कर देता है। आनुवंशिकता का अस्थिर होना, (जैसे पूर्णतः अनियंत्रण), उत्परिवर्तित प्रतिरूपों को बनाने की क्षमता को बल देता है। इस प्रकार कैंसर क्रमिक विकास के बुनियादी तर्कों को जिस तरह से उपयोग में लेता है, यह अन्य बीमारियों में नहीं होता। अगर हम एक प्रजाति की तरह, डार्विन के चयन के अंतिम उत्पाद है तो भी यह अतुल्य बीमारी हमारे भीतर घात लगाए बैठी रहती है।

इस तरह के रूपकीय धोखे हमको दूर तक ले जाने की क्षमता रखते हैं, लेकिन ये कैंसर जैसे विषय से संबंधित हैं तो टाले नहीं जा सकते। इस पुस्तक को लिखने को शुरुआती दौर में मैंने इस परियोजना को कैंसर के "इतिहास" के रूप में शुरू किया। लेकिन मैंने यह महसूस किया और बच भी नहीं पाया कि मैं किसी चीज के बारे में नहीं किसी व्यक्ति विशेष के बारे में लिखने जा रहा हूं। मेरा विषय रोज इस तरह परिवर्तित होता गया मानो यह व्यक्ति विशेष के रूप में प्रकट हो रहा होः रहस्यमयी रूप से, यदि यह व्यक्ति विशेष के रूप में नहीं था तो उसका शीशे में दिखने वाला धुंधला अक्स अवश्य था। ये किसी बीमारी का चिकित्सकीय इतिहास न होकर कुछ ज्यादा ही व्यक्तिगत, भावनात्मक रूप अर्थात इसकी आत्मकथा थी।

इस तरह पुनः आरंभ करते हुए मुझे प्रत्येक जीवनीकार की तरह विषय से सामना करना ही पड़ाः कैंसर कहां पैदा हुआ? कैंसर कितना पुराना है? पहला व्यक्ति कौन था जिसने इसे एक बीमारी की तरह देखा?

1862 में एडविन स्मिथ ने मिस्र के लक्सर में प्राचीन वस्तु विक्रेता से एक 15 फुट लंबा भोजपत्र खरीदा (कुछ लोग कहते हैं चुराया)। यह आदमी कुछ और ही था–

थोड़ा सा विद्वान, थोड़ा सा फेरीवाला, प्राचीन वस्तुओं की हेरा–फरी करने वाला। यह स्वयंनिर्मित मिस्र का विशेषज्ञ था। भोजपत्र जर्जर अवस्था में था, इसके पीले पेज प्रवाही मिस्री लिपि से भरे पड़े थे। ऐसा माना जाता है कि यह 17वीं सदी B.C. में लिखित था। इसको लिप्यंतरित करने की हस्तलिपि 2500 B.C. की थी। ऐसा करने वाले साहित्यिक चोर ने हड़बड़ी में गलतियां की तथा उनको लाल स्याही से हाशिए में लिखा।

1930 में अनूदित भोजपत्र की सामग्री को अब इम्होटेप के उपदेश माना जाता है जो मिस्र के महान फिजीशियन थे। इसका समय 2625 B.C. के आस–पास था। इम्होटेप उन चंद लोगों में था जिसे पुराने राजतंत्र के गैर राजशाही व्यक्ति होने के बावजूद लोग जानते थे। ये मिस्र के व्यापक पुनर्जागरण के केंद्र बिंदुओं में से था। राजा जोजर के दरबार में एक वजीर के अलावा, आधा–अधूरा तंत्रिका शल्य–चिकित्सक था साथ ही वास्तुशास्त्र, खागोलशास्त्र व ज्योतिष शास्त्र में भी दखल रखता था। यहां तक कि यूनानियों को भी उसके बौद्धिक आतंक का सामना करना पड़ा जो कि सदियों बाद मिस्र पहुंचे। इन्होंने भी उसे एक जादूगर की तरह माना और अपना चिकित्सा का देवता अस्क्लेयिस घोषित किया।

लेकिन स्मिथ के भोजपत्र की विलक्षण विशेषता धर्म और जादू न होकर धर्म और जादू का अभाव होना था। जादू–टोने तथा आकर्षण से भरे उस युग में इम्होटेप ने शुद्ध वैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग करते हुए टूटी हड्डियों एवं खिसकी हुई रज्जुओं के बारे में लिखा, मानो वह आधुनिक शल्य–चिकित्सा की पुस्तक लिख रहा हो। भोजपत्र के 48 प्रकरणों में टूटे हुए हाथ, त्वचा के फोड़ों के गड्ढे, खोपड़ी की टूटी हड्डियों जैसे समस्याओं का इलाज जादू–टोने से न करके चिकित्सकीय शर्तों से किया गया था और इनमें से प्रत्येक के लिए शारीरिक संरचना की शब्दावली, जांच का तरीका, सारांश और पूर्वानुमान था।

इस ज्ञान के आलोक में पहली बार कैंसर एक भिन्न बीमारी के रूप में प्रकट हुआ। प्रकरण नंबर पैंतालिस को व्याख्यायित करते हुए इन्होटेप ने सलाह दी "यदि आप किसी (प्रकरण) की पड़ताल कर रहे हैं जैसे स्तन के ऊपर के उभरे हुए मांस की तो आप पाएगे कि ये पूरे स्तन पर फैल चुका है, अगर आप अपने हाथ से स्तन को महसूस करेंगे तो पाएंगे कि वह ठंडा है, जब आप उस स्तन को अनुभव करते हैं

तो पाते हैं कि उसमें कोई तपिश नहीं है; उसके ऊपर कोई पपड़ी कोई द्रव नहीं है, द्रव निकलने का कोई लक्षण नहीं है, अब अगर आप उसे दबाएंगे तो दूसरी जगह उभर जाएगा। उस रोगी के बारे में आप कह सकते हैं; यह एक उभरे हुए विकृत हिस्से का प्रकरण है जिससे हमें जूझना है उभरी हुई गांठ का स्तन में होने से मतलब है स्तन में सूजन की उपस्थिति, जो कि बड़ी, फैली हुई तथा कड़ापन लिए है; स्तन को छूना एक लपेटकर बनाई गेंद को छूने जैसा है, अथवा उसकी तुलना एक रक्त कणिका से बने कच्चे फल से की जा सकती है जो कि थोड़ा कड़ा और छूने पर ठंडा होता है।"

अगर "स्तन में उभरी हुई विकृत गांठ" जो कि ठंडी कड़ापन लिए, रक्त कणिका से बनी फल जैसी है तथा जो घातक रूप से त्वचा में बढ़ रही है तो इससे अच्छा स्तन कैंसर का उदाहरण नहीं हो सकता है। भोजपत्र के सभी प्रकरणों के बाद इलाज का संक्षिप्त विवरण था, भले ही वह तत्काल राहत देने वाला हो। तंत्रिका के ऑपरेशन से संबंधित मरीजों के कानों में दूध डाला जाता था, घाव के लिए गरम बालू से भरी पोटली तथा जले हुए लोगों के लिए मलहम का विवरण था। 45 नं. प्रकरण को लेकर इम्होटेप चुप थे। 'थेरेपी' नामक भाग में उन्होंने केवल एक वाक्यलिखा, "यहां कुछ भी नहीं"।

इस असमर्थता को स्वीकार कर लेने के साथ ही कैंसर प्राचीन चिकित्सकीय इतिहास से ओझल हो गया। अन्य बीमारियां उग्र रूप धारण किए प्रथ्वी पर आख्यानों व दस्तावेजों में अपने गूढ़ पगचिन्ह छोड़ती हुई विचरती रहीं। एक कुपित रहने वाली, ज्वर जैसी बला टाइफस[26] ने शायद, 1715 B.C. में बंदरगाह नगर अवारिस को चपेट में लिया और इसकी जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा साफ कर दिया। चेचक ज्वालामुखी की तरह क्षीं में उभरा और 12वीं सदी B.C.में रामसे पंचम के चेहरे पर फुंसी के छोटे–छोटे निशान इसकी चुगली कर रहे थे। टीबी शुरू हुआ तथा यहां समय विशेष पर आने वाली बाढ़ की तरह सिंधु सभ्यता से वापस चला गया। लेकिन कैंसर यदि इन महामारियों में अपना स्थान रखता है तो वह गुप्त है वह चिकित्सकीय

[26] एक बीमारी जो संक्रमण से फैलती है, बुखार, सरदर्द के साथ बैंगनी रंग के निशान पड़ जाते हैं।

साहित्य अथवा अन्य किसी साहित्य द्वारा आसानी से न पकड़ में आने वाले अपने निशान छोड़ता है।

इम्होटेप के विवरण आने के दो हजार साल बाद एक बार फिर से हम कैंसर के बारे मे और ज्यादा सुनते हैं। और दोबारा यह बीमारी चुप्पी और व्यक्तिगत शर्म को साथ लेकर आई। 440 B.C. के आस–पास हेरोडोटस ने अपनी विस्त्रत रचना 'हिस्ट्रीज' में फारस की रानी के अचानक से एक असामान्य बीमारी के चपेट में आने की चर्चा की है। अटोसा, साइरस की बेटी व डेरियस की पत्नी थी। (साइरस) हखामनी जैसे क्रूर वंश का उत्तरकालीन शासक था जो भूमध्यसागर के लीडिया से फारस की खाड़ी के बेबीलोनिया तक विस्तृत भूभाग पर शासन करता था। शासन के मध्य में, अटोसा ने अपने स्तन में रक्तस्राव करने वाली दूषित गांठ की ओर ध्यान दिया जो शायद एक विशेष प्रकार का स्तन कैंसर था। इसको एक भड़काने वाली संज्ञा दी गई। (इस तरह के कैंसर में दूषित कोशिकाएं स्तन की लासिका ग्रंथियों में अवांछित घुसपैठ करती है, जिसकी वजह से फूली हुई तथा लाल रंग की एक ग्रंथि बन जाती है)।

अगर अटोसा चाहती तो बेबीलोनिया से लेकर यूनान तक के समस्त राजसंरक्षित फिजीशियनों के दल उसको उसके बिस्तर पर ही इलाज करने के लिए तत्पर हो जाते। इसके बजाए उसने अपने आपको अथाह अकेलेपन में घेर लिया। उसने अकेलेपन में ही, ताकि यह और न फैल सके, अपने आपको चादरों में लपेट लिया। डेरियस के डॉक्टरों ने इलाज का प्रयास किया होगा लेकिन कुछ हाथ नहीं लगा। आखिरकार एक यूनानी गुलाम डेमोसीड्स ने स्तन काटकर निकाल देने के लिए उन्हें राजी कर लिया।

शल्य–चिकित्सा के बाद, जल्द ही अटोसा हेरोडोटस के लेखन में से ओझल हो गई। उनके लिए तह सिर्फ एक कथावस्तु में आया हुआ मोड़ था। हम यह नहीं कह सकते कि वह गांठ दोबारा उभरी या नहीं अथवा कब और कैसे मरी लेकिन कम से कम उसका तरीका अस्थाई रूप से सफल रहा था। अटोसा ने अपने जिंदा रहने

के लिए डेमोसीड्स को धन्यवाद दिया और थोड़ी देर के लिए दर्द और बीमारी से छुटकारे ने उसको अपनी जनता की अभिलाषा कि (वह ठीक हो जाए) के प्रति भारी कृतज्ञ बना दिया। डेरियस साम्राज्य के पूर्वी हिस्से में स्थिति स्कीथिया के खिलाफ अभियान की योजना बना रहा था। डेमोसीड्स ने अटोसा से अनुग्रह किया कि वह अपने मूल स्थान यूनान में वापस जाना चाहता है। अटोसा ने अपने पति से कहा इस अभियान को पश्चिमी सीमा पर भी ले जाया जाए ताकि यूनान को भी साम्राज्य में ले लिया जाए। फारसी साम्राज्य का पूर्व से पश्चिम में परिवर्तन और उसके बाद हुए यूनान–फारस के युद्धों की श्रृंखला, पश्चिम के प्रारंभिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ है। यह अटोसा की गांठ ही थी जिसने उस जमाने में हजारों जंगी जहाजों को तैयार करा दिया। इस तरह से कैंसर ने अपनी निशानी पुराने विश्व को दे दी जो तब ढंकी–छिपी रहने वाली बीमारी थी।

लेकिन हेरोडोट्स व इम्होटेप कहानीकार है और अन्य कहानीकारों की तरह ये भी असंगतता और विरोधाभास से दूर नहीं है। उन लोगों ने जिसे 'कैंसर' व्याख्यायित किया वह वास्तव में मस्सा हो सकता था या शायद वे लोग मोटे तौर पर फोड़े, अल्सर, मस्से या किसी तिल को परिभाषित कर रहे थे। इतिहास में कैंसर के निर्विवादित प्रकरण वे हैं जिसमें किसी भी तरीके से दूषित ऊतक संरक्षित रहते हैं और इस तरह के कैंसर से मुखामुखम – एक पुरानी बीमारी की आंखों से आंखें मिलाना है– करना चाहते है, तो इसके लिए आपको हजारों साल पुरानी कब्रगाह की यात्रा करने की आवश्यकता होगी जो सुदूर पेरू के दक्षिणतम बिंदु पर, बालू भरे मैदान में स्थित है।

यह मैदान अटाकामा मरूस्थल के उत्तरी किनारे पर स्थित शुष्क, निर्जन 6 हजार मील की पट्टी है जो पेरू से चिली के बीच में विस्तृत वृहत एंडीज के साये में स्थित है। यहां लगातार गर्म व शुष्क हवा चलती है तथा इस शैल–प्रदेश ने लिखित इतिहास में कभी बारिश का अनुभव नहीं किया। यह कल्पना से परे है कि यहां कभी मानव जाति पल्लवित हुई लेकिन यह सच है। इस मैदान में सैकड़ों कब्रे बिखरी हुई

हैं तथा छोटे व छिछली मिट्टी के गड्ढे हैं जो पत्थरों से सावधानीपूर्वक करीनाबद्ध हैं। सदियों से कुत्ते, तूफान तथा कब्र– चोरों ने इन छिछली कब्रों को खोद डाला या इतिहास को खोद डाला।

चिरिबाया जनजाति के सदस्यों के ममीकृत अवशेष इन कब्रों में थे। चिरिबायाओं ने अपने मृतकों के संरक्षण के लिए कोई प्रयास नहीं किए लेकिन भगवान की दया से वातावरण ममीकरण के लिए एकदम ठीक था। यहां की मिट्टी शरीर से पानी और अन्य द्रवों को खींच लेती थी तथा हवा ऊपर से ऊतकों को सूखा देती थी। इस प्रकार, नीचे रखे हुए शरीर, तेजी से उसी समय और जगह पर अकड़ जाते थे।

1990 में दुलुथ की यूनीवर्सिटी ऑफ मिनिसोटा के एक प्रोफेसर आर्थर ऑफडेरहाईड की निगाह में इस तरह की बड़ी व सूखी हुई कब्रगाह आई। इसमें लगभग 140 शरीर थे। ऑफडेरहाइड ने प्रशिक्षण रोगविज्ञानी का लिया था लेकिन उनकी विशेषता पुराने रोगों के विज्ञान में थी। उनकी शवों की परीक्षाएं फार्बर की तरह जीवित मरीजों पर नहीं की गई थी बल्कि वे ममीकृत अवशेषों पर थी जो पुरातात्विक स्थल पर पाए गए थे। उन्होंने इन मानव प्रतिरूपों को मिनिसोटा के तहखाने में बने छोटे और जीवाणुविहीन दूध के कंटेनरों में सुरक्षित किया। लगभग पांच हजार ऊतकों के टुकड़े, बीसियों शव परीक्षण तथा सैकड़ों टूटी हुई खोपड़ियां उनकी कोठरी में थी।

चिरिबाया वाली जगह पर आफडेरहाईड ने एक अस्थाई ऑपरेशन करने वाली मेज की व्यवस्था की तथा कई हफ्तों में 140 शव परीक्षण किए। एक शरीर में से एक अद्‌भुत चीज मिली। यह एक 35–36 साल की औरत की ममी थी, जो अपने पैरों को मोड़कर छिछली कब्र में बैठी थी। जब अफडेरहाईड ने उसका परीक्षण किया तो उनकी उंगलियों को एक "बल्ब के आकार का उभार" उसकी बायीं बांह में ऊपर की ओर महसूस हुआ। कागज की तरह मुड़ी–तुड़ी त्वचा में यह एकदम सुरक्षित था जो कि जस का तस हड्डी के उभार में जड़ा हुआ था। निःसंदेह रूप से यह लगभग एक हजार साल पुराना कैंसर था जो ममी में सुरक्षित था, यह दूषित हड्डी का ट्यूमर था जिसे ऑस्टियोसरकोमा भी कहते हैं। अफडेरहाईड को संदेह होता है कि यह ट्यूमर उसके जीवित रहते हैं। त्वचा से उभरकर आया। यहां तक कि छोटा सा

ऑस्टियोसरकोमा असहनीय दर्दकारी होता है। वे बताते हैं इस स्त्री का दर्द अवश्य ही कल्पना से परे हो रहा होगा।

अफडेरहाईड एकमात्र प्राचीनरोग विज्ञानी नहीं थे जिसने ममीकृत नमूनों में कैंसर पाया (हड्डी का ट्यूमर चूंकि कड़े व कैल्शियम कृत ऊतकों को जन्म देता है इसलिए बहुत अधिक संभावना रहती है कि यह सदियों तक सुरक्षित बना रहे)। वे बताते हैं "ममियों के जो अन्य प्रकार के कैंसर पाए गए उनमें दूषित ऊतक सुरक्षित थे। इस प्रकार के कैंसर में सबसे पुराना प्रकार 400 A.D. के पेढ़ू के कैंसर का है जो मिस्र के दखलेह से मिला।" इस तरह के अन्य प्रकरणों को जिन प्राचीन रोग विज्ञानियों ने खोजा, उनमें वास्तविक ट्यूमर तो नहीं पाया इसके बजाय शरीर में इसके चिन्ह जरूर मिले। कुछ खोपड़ियों में अनसुलझे छोटे–छोटे छेद थे जो कि खोपड़ी के कैंसर अथवा कंधे की हड्डी के कैंसर के थे, ये सभी गतिशील त्वचा अथवा स्तन कैंसर के थे। 1914 में पुरातत्वविदों की एक टीम नें अलेकजेंड्रिया के मुर्दों के तहखाने में मिस्र की 2,000 साल पुरानी ममी को खोज निकाला। इस ममी के श्रोणि की हड्डी में ट्यूमर पैठ बना चुका था। लुईस लेकी, नामक मानवशास्त्री ने प्राचीनतम ज्ञात कंकालों को खोजा और इन्होंने ही उस जगह के पास से जबड़े की एक हड्डी खोजी जिसमें दक्षिणपूर्वी अफ्रीका विशेष में पाए जाने वाले विशिष्ट लिम्फोमा के चिन्ह मिले (यद्यपि इस तरह के ट्यूमर की उत्पत्ति कभी वैज्ञानिक रूप से पक्की न हो पाई)। यदि इस तरह की असाध्यता के प्राचीन चिन्हों का वे खोजे प्रतिनिधित्व करती हैः तो कैंसर 'आधुनिक' बीमारी से बहुत दूर है। यह किसी मानव प्रतिरूप में अभी तक की पाई गई प्राचीनतम बीमारी है– बहुत संभव है सबसे प्राचीनतम।

सबसे अहम खोज कैंसर की पुराने समय में मौजूदगी नहीं है, अहम है कि यह इतना कम होता था। जब मैंने अफडेरहाइड से इस बारे में बात की तो वे हंसे "कैंसर का शुरुआती इतिहास" उन्होंने कहा "इतिहास है, वह बहुत कम कैंसर का इतिहास है।" मेसोपोटामिया के निवासी अपने माइग्रेन के बारे में जानते थे; तथा मिस्री लोग दिमागी बीमारियों से परिचित थे। कुष्ठ रोग की तरह की 'सारात'

(tsaraat) नामक बीमारी का उल्लेख लेवीटिक्स ने किताब में किया है। हिंदू वेदों ने ड्रॉप्सी (जलोदर) के लिए चिकित्सकीय शब्द है तथा स्मॉल पॉक्स (चेचक) के लिए विशिष्ट देवी का उल्लेख है। टीबी सर्वव्यापी था तथा पुराने लोग इससे परिचित थे– जैसे बर्फ के साथ इस्किमो – साथ ही प्रत्येक अवतार के लिए अलग शब्दावली थी। लेकिन कैंसर के सामान्य प्रकार, जैसे स्तन, फेफड़े या प्रोस्टेट कैंसर आदि ओझल थे। कुछ उल्लेखनीय अपवादों को छोड़कर चिकित्सा के विस्तृत इतिहास में कैंसर के लिए कोई किताब या कोई ईश्वर नहीं है।

इस अनुपस्थिति के कई कारण है। कैंसर एक उम्र से संबंधित बीमारी है जो कभी–कभी चार घातांकीय तरीके से बढ़ती है। कैंसर होने की संभावना उम्र से भी बढ़ती है। जैसे– तीस साल की 400 महिलाओं में से एक को तथा सत्तर साल की महिलाओं में 9 में से एक में होता है। अधिकतर पुराने समाज में लोग कैंसर से जूझने के लिए जीवित ही नहीं रह पाते थे। स्त्रियां और पुरुष लंबे समय तक, टीबी, जलोदर, कॉलरा, चेचक, कुष्ठ, प्लेग अथवा न्यूमोनिया से जूझते रहते थे। अगर कैंसर का अस्तित्व था तो वह बीमारियों के अथाह सागर में डूबा हुआ था। वास्तव में कैंसर का दुनिया में उभार, दोहरी नकारात्मकता का परिणाम हैः यह सामान्य तभी होता है जब अन्य सभी मारने वाले स्वयं मर जाएं। 19वीं सदी के डॉक्टरों ने प्रायः कैंसर का संबंध सभ्यता से जोड़ा हैः उन्होंने कल्पना की कि कैंसर का जन्म आधुनिक जीवन की पेचीदगियों से हुआ है जो किसी के शरीर में चिकित्सकीय वृद्धि को उकसाता है। संबंध तो ठीक था लेकिन कारणत्व ठीक नहीं थाः सभ्यता कैंसर का कारण नहीं था लेकिन मानव जीवन की विविधता को बढ़ाकर सभ्यता ने इसको बेपर्दा जरूर कर दिया।

19वीं सदी की शुरुआत में यद्यपि दीर्घायुता कैंसर के प्रसार का मुख्य कारण थी लेकिन संभवतः एकामत्र नहीं। कैंसर को शीघ्रातिशीघ्र पहचानने और उससे होने वाली मौतों को ठीक से पहचानने की हमारी क्षमता पिछली सदी में नाटकीय रूप से बढ़ी है। 1850 में ल्यूकेमिया से होने वाली बच्चों की मौत का कारण ल्यूकेमिया या संक्रमण बताया गया होगा (अथवा जैसा कि बेनेट ने माना होगा ''खून का मवादीकरण'')। और कैंसर को पहचानने की क्षमता को शल्य–चिकित्सा, ऊतकीय परीक्षण, तथा शव परीक्षण के तरीकों ने उन्नत किया। स्तन कैंसर को जल्दी

पहचानने के क्रम में एक्स–किरणों को उपयोग में लाने (स्तन–परीक्षा) से पहचानने की क्षमता में वृद्धि हो गई है। यह विरोधाभासी सा प्रतीत होने वाला प्रेक्षण सफल तब होता है जब हम यह महसूस करते हैं कि एक्स–किरणें ट्यूमर की शुरुआत में ही पहचान करने की क्षमता रखती है।

अंततः आधुनिक जीवनचर्या की संरचना में आए बदलावों ने कैंसरों के वर्णक्रमों को उल्लेखनीय रूप से परिवर्तित कर दिया है। कैंसर से पीड़ित होने वाले कुछ लोगों की संख्या बढ़ी है तथा कुछ कैंसरों से प्रभावित लोगों की संख्या घटी है। उदाहरणतः पेट का कैंसर। यह 19वीं सदी के अंत तक एक निश्चित जनसंख्या में व्यापक था, संभवतः यह अचारों के अभिकर्मकों एवं संरक्षित करने वाले पदार्थों में कैंसरकारक तत्व होते हैं ये स्थान विशेष में स्थित जीवाणु से संक्रमित होकर और भी ज्यादा खतरनाक हो जाते हैं।

आधुनिक शीतलकों के प्रयोग (और संभवतः आमजन के खान–पान के सुधार ने, क्षेत्र विशेष में जीवाणुओं से होने वाली बीमारियों की दर में कमी की) पेट के कैंसर की महामारी को कम कर दिया है। इसके विपरीत 20वीं सदी में 1950 के दशक के दौरान पुरुषों में सिगरेट के कारण, फैफड़ों के कैंसर में नाटकीय वृद्धि हुई। औरतों में, जिन्होंने 1950 के दशक में सिगरेट शुरू की उनमें यह संख्या अभी कम है या इसके परिणाम अभी आने बाकी है।

जनांकिकीय और बीमारी फैलने से रोकने के अध्ययनों में परिवर्तनों के परिणाम बहुत ही वृहत थे, और है। 1900 में रोजवेल पार्क ने उद्धृत किया कि अमेरिका में होने वाली मौतों का बहुत हद तक जिम्मेदार टीबी था। टीबी के बाद मौत के कारणों में न्यूमोनिया (जॉन हॉपकिंस विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध फिजीशियन विलियम ऑस्लर ने इसे "मृत्यु की टीम का सरदार" कहा) डायरिया और आंत में जलन, आते हैं। मौत के कारणों में अभी तक कैंसर सातवें पायदान पर था। 1940 की शुरुआत तक कैंसर ने इस सूची में दूसरे पायदान पर छलांग लगा दी तथा हृदय रोग के बाद दूसरे स्थान पर पहुंचा गया। इसी अवधि में अमेरिकियों की जीवन प्रत्याशा 26 साल बढ़ गई। 60 साल से ऊपर के लोगों का अनुपात, जिस उम्र में कैंसर हमला करता है, लगभग दुगुना हो चुका था।

लेकिन प्राचीन कैंसरों की नगण्य उपस्थिति के बावजूद, अफडेरहाइड की पैंतीस साल की ममी का हड्डी की गांठ को भुलाना असंभव है। वह औरत अवश्य अपनी हड्डी में होने वाले असहनीय दर्द से तथा बांह में विकसित होती हुई गांठ से आश्चर्यचकित हुई होगी। ट्यूमर को देखने के बाद इस अनुभव से इंकार नहीं किया जा सकता कि एक दैत्य को उसकी शुरुआत में देखा गया था।

बोझ

काले पित्त का असंतुलन कैंसर का कारण होता है।

—गैलेन, 130 A.D.

इस तरह से हमने कैंसर की वास्तविक प्रकृति के बारे में कुछ नहीं सीखा है। हम लोग वहीं है, जहां यूनानी थे।

—फ्रांसिस कार्टर वुड (1914)

यह एक खराब पित्त है। यह एक बुरी आदत है यह एक बुरा मालिक है यह एक बुरा गुणसूत्र है।

—मेल ग्रिब्स, *कैंसरः द इवोल्यूशनरी लिगेसी, 2000*

कुछ मायने में इस बीमारी का तब तक अस्तित्व नहीं होता है, जब तक हम, ज्ञानेंद्रियों से महसूस करके नामकरण करके तथा इस पर प्रतिक्रिया करके सहमत नहीं होते कि यह अस्तित्व में है।

— सी. ई. रोजेनबर्ग

यहां तक कि प्राचीन दैत्य को भी संज्ञा की आवश्यकता होती है। किसी बीमारी का नामकरण पीड़ा की विशिष्ट शर्त को वर्णित करने जैसा है— चिकित्सकीय क्रिया से पहले यह एक साहित्यिक क्रिया है। एक रोगी जब चिकित्सकीय पड़ताल का केंद्र बिन्दु बनता है उससे पहले वह सामान्यतः कथावाचक होता है जो पीड़ा का वर्णन करता है, वह एक यात्री होता है जो इस बीमारी के साम्राज्य को धूम चुका है। इस तरह, किसी बीमारी से छुटकारा पाने के लिए इस बीमारी की कहानी को कहकर बोझ हल्का करना चाहिए।

प्राचीन बीमारियों के नाम अपने आप में संघनित कहानियां हैं। टाईफस एक प्रचंड बीमारी है। यह अनियमित भीषण बुखार को साथ लाती है। यह यूनानी भाषा के 'टुफोन' से निकली है जो हवाओं का देवता है। यह वह शब्द है जिससे आधुनिक 'टाइफून' बना। 'इन्फ्लूएंजा' शब्द लैटिन के 'इन्फ्लुएनशिया' से बना क्योंकि मध्यकालीन डॉक्टरों ने कल्पना की कि ग्रहों और तारों के पृथ्वी के परिक्रमण से आवर्ती महामारी फ्लू प्रभावित हुई थी। ट्यूबवकुलोसिस लैटिन के 'टूबर' से निकला है, तथा ग्रंथियों की सूजी हुई गांठ है जो कि छोटी सब्जियों सी दिखती है। लसिका ट्यूबरकुलोसिस या लसिका ग्रंथियों की टीबी को 'स्क्रोफुला' कहा जाता था जो सुअर के बच्चे के लैटिन नाम 'Piglet' से बना है। यह सूजी हुई ग्रंथियों की एक घृणित तस्वीर सामने लाता है जिसमें ये ग्रंथियां पंक्ति में व्यवस्थित हैं जैसे स्तन पान करने वाले सुअरों का समूह।

400 B.C. के आसपास डिप्पोकेटस के समय में पहली बार चिकित्सकीय साहित्य में कैंसर का नाम उभरा। यह शब्द 'कारकिनोस' (केकड़े) का यूनानी नाम है। एक गांठ जो अपने चारों ओर से सूजी हुई रक्त कणिकाओं से घिरी होती है, इससे हिप्पोडेटस को कीचड़ में धंसे हुए केकड़े की याद आई जिसके पैर एक गोलाकार तरीके से फैले हुए थे। यह चित्र अजीब (कुछ ही कैंसर सचमुच केकड़े जैसे होते हैं) लेकिन सुस्पष्ट था। बाद में डॉक्टरों और मरीजों या दोनों तरह के लेखकों ने इसको और अलंकृत किया। कुछ लोगों के लिए ट्यूमर की कड़ापन लिए व गुंथी हुई सतह केकड़े की पीठ के समान है। कुछ लोगों ने अनुभव किया कि यह बीमारी केकड़े की तरह हमारे मांस में चुपके से रेंगती हुई बढ़ती है। अन्य दूसरे लोगों के लिए बीमारी से होने वाली अचानक टीस उसी तरह थी जैसे केकड़े की चिमटियों ने पकड़ा हो।

यूनानी भाषा का एक अन्य शब्द कैंसर के इतिहास में उभरा 'ओंकोस'। यह एक ऐसा शब्द था जिसका उपयोग कभी–कभी ट्यूमर का वर्णन करने के लिए किया जाता था जिससे आधुनिक ऑन्कोलॉजी बना। 'ओकोंस' शब्द द्रव्यमान अथवा भार का यूनानी नाम है और जिसे सामान्यीकृत रूप से एक बोझ कह सकते हैं; कैंसर की कल्पना शरीर द्वारा ढोए जाने वाले बोझ की तरह की गई। यूनानी रंगशाला में यही शब्द दुखदायी मुखौटे को व्यक्त करता था जो कि प्रायः स्थूल, कोणदार वजन लिए हुए होता था। मुखौटा बताता था कि इसको पहनने वाला मानसिक भार ढो रहा है।

हालांकि ये विभिन्न रूपक हमारी कैंसर की समकालिक समझदारी से शायद ही साम्य रखते हैं जिनको हिप्पोकेटस ने 'कारकिनोस' कहा और वह बीमारी जिसे हम अब कैंसर के रूप में जानते हैं वास्तव में विस्तृत भिन्नता रखती थी। हिप्पोकेट का 'कारकिनोस' ज्यादातर बड़े सतही ट्यूमर थे, जिन्हें नंगी आंखों से देखा जा सकता था, जैसे– स्तन, त्वचा, जबड़े, गर्दन और जीभ के। यहां तक कि हिपाकेट दूषित व अदूषित ट्यूमर में शायद अंतर नहीं कर पाए। उनका 'कारकिनोस' सभी संभव सूजनों को शामिल किए हुए था, जैसे– नोड, रक्तमणि पॉलिप, बाहर निकला मांस, छोटी गांठ, फुंसी तथा ग्रंथियां, सभी गांठों को बिना अंतर किए रोग–विज्ञान के एक ही वर्ग में डाल दिया।

यूनानियों के पास सूक्ष्मदर्शी नहीं थी। कोशिका उनकी कल्पना से परे भी और यह विचार की 'कारकिनोस' कोशिकाओं का अनियंत्रित विकास है, उनके लिए संभव नहीं था। यद्यपि वे पहले से द्रव–यांत्रिकी में व्यस्त थे, जैसे रहट, पिस्टन, बॉल्व (द्रव्य कपाट), कोष्ठ, नहर में पानी को संतुलित करने वाला यंत्र आदि। जलगति शास्त्र में एक क्रांति जो सिंचाई व नहर खोदने से शुरू हुई और आर्कमिडीज के उस सिद्धांत पर जाकर खत्म हुई जिसका नाम उसके नाम से रखा गया। जलगति विज्ञान में उनकी तल्लीनता यूनानी चिकित्सा विज्ञान व रोग निदान विज्ञान में भी दिखी। बीमारी को, सभी बीमारी को व्याख्यापित करने के लिए हिप्पोक्रेट्स ने आयतन व द्रव आधारित सिद्धांतों को प्रचलन में लाए तथा जिनका उपयोग बिना हिचकिचाहट के न्यूमोनिया, फोड़ा, पेचिश और बावासीर पर किया। हिप्पोक्रेटस ने बताया कि मानव शरीर चार प्रधान शरीरी द्रवों से मिलकर बना है: खून, काला पित्त, पीला पित्त तथा बलगम (श्लेष्मा)। इनमें से प्रत्येक के विशिष्ट रंग (लाल, काला, पीला और सफेद), श्यानता तथा आधारभूत गुण थे। सामान्य शरीर में इन चारों द्रवों में अस्थिर ही सही पूर्ण संतुलन होता है। बीमारी में यह एक द्रव की अधिकता से असंतुलित हो जाता है।

क्लाउडियस गैलेन एक फिजीशियन, सफल लेखक प्रभावशाली यूनानी चिकित्सक थे जो 160 A.D. में रोमनों का इलाज करते थे, इन्होंने हिप्पोकेटस के सिद्धांत को चरम पर पहुंचा दिया। हिप्पोकेटस की तरह गैलन भी सभी बीमारियों को विभिन्न द्रवों की स्राव की अधिकता के आधार पर वर्गीकृत किया। जैसे सूजन व जलन, लाल, गर्म दर्दपूर्ण विस्तार (फैलाव) का कारण रक्त की अत्यधिक प्रचुरता

बताई। फोड़ा, पस से भरा स्थान, जुकाम तथा ग्रंथिका के लसिका का ठंडा लिजलिजा तथा सफेद होना बलगम की अधिकता के कारण था। पीलिया का कारण पीले पीत के अधिक स्राव के कारण था। कैंसर के लिए चारों शारीरिक द्रवों में सबसे दोषपूर्ण एवं बेचैन करने वाले द्रव के रूप में काले पित्त को रखा। (केवल एक अलग बीमारी जो रूपकों से भरी थी, का कारण था तैलीय व श्यान द्रव या एक अवसाद। सचमुच "मिलेनकोली" जो अवसाद का मध्यकालीन नाम था जिसका नाम यूनानी 'मेलास' से आया जिसका आशय 'ब्लैक' है तथा अन्य शब्द 'खोले' का आशय "पित्त" था अवसाद व कैंसर जैसी दिमागी तथा शारीरिक बीमारियां "Black Bile" के कारण थी। अतः ये इस प्रकार आंतरिक रूप से जुड़ी हुई थी)। गैलन ने बताया कि कैंसर "ब्लैक बाइल" का जाल था– इस तरह स्तंभित पित्त जो अपनी जगह से हिल–डुलने में असमर्थ था चटाई की तरह गुंथ कर वस्तुत का रूप लेता था।

एक अंग्रेज सर्जन थॉमस गेल ने गैलेन की परिभाषा के बारे में 16वीं सदी में लिखा, "यदि इस शारीरिक द्रव का तेजी से स्राव होता है तो यह अल्सर बनाना शुरू कर देता है और ऐसा काम करने वाले ये ट्यूमर और अधिक काले होते हैं।"

इस छोटे से और सुस्पष्ट विवरण ने कैंसर विज्ञान के भविष्य पर शक्तिशाली प्रभाव डाला, यह प्रभाव दोनों से, वह गैलेन हो (या गेल का) से कहीं अधिक सुविस्तारित था। गैलन की परिभाषा बताती है कि कैंसर एक दूषित दैहिक अवस्था का परिणाम था या ब्लैक बाईल के अत्यधिक अंतःस्राव का। ट्यूमर सिर्फ देह के किसी खास भाग के उभार का नाम था, यह एक जीवत्व का असंतुलन था जो पूरे शरीर में फैल चुका था। हिप्पोकेट्स ने एक न हजम होने वाला तर्क दिया कि कैंसर को "बिना हलाज किए छोड़ दें जिससे वह (पीड़ित) कुछ ज्यादा जी ले।" पांच सौ साल बाद गैलन ने अपने शिक्षक के दुरूह चिंतन को अच्छे तरीके से शारीरिक अनुमान में परिभाषित किया। गैलन ने बताया कि शल्य क्रिया से कैंसर के इलाज की समस्या यह है कि काला पित्त अन्य द्रव की तरह निश्चित तथा व्यापक रूप से हर जगह होता है। आप कैंसर को काटकर हटा सकते हैं लेकिन बाइल पुनः वापस बहकर आ सकता है; जैसे– अर्क पेड़ की शाखाओं से रिसता रहता है।

गैलेन की मृत्यु 199 A.D. में रोम में हुई लेकिन उनका प्रभाव चिकित्सा–पद्धति पर शताब्दियों तक रहा। कैंसर की काले पित्त की परिभाषा रूपकीय ढंग से इतनी

मोहक थी कि डॉक्टरों के दिमाग पर छा गई। कैंसर को काटकर अलग करना– दैहिक समस्या का अस्थाई इलाज है; यह मूर्खों का इलाज माना गया। सर्जनों की पीढ़ियों ने अपने परीक्षणों को गैलेन के ऊपर लाद दिया तथा और मजबूत किया। अरडेरन के जॉन ने 1300 के मध्य में यह लिखा, "रास्ते से मत भटको तथा इलाज के लिए तैयार रहो।" और यह भी "यह सिर्फ आपके लिए अपमान ही होगा।" 15वीं सदी के शायद सबसे प्रभावशाली सर्जन लियोनॉर्ड बटीपग्लिया ने अपनी खुद ही आलोचना की: "जो लोग कैंसर को काटकर, खोदकर सतह से हटाकर, खोदकर जड़ से हटाने से इलाज का दावा करते हैं वे गुमराह करते हैं; ये लोग केवल न बनने वाले अल्सर को अल्सर में रूपांतरित कर देते हैं.... मैंने अपने समस्त चिकित्सकीय जीवन में कभी कैंसर को चीर–फाड़ से ठीक होते नहीं रेखा और न ही ऐसे व्यक्ति को जला जिसने ऐसा किया हो।"

अनजाने ही सही गैलेन ने निश्चितरूप से भविष्य के कैंसर पीड़ितों की सहायता की; कम से कम अस्थाई ही सही। बिना निश्चेतक व प्रतिजैविकों के ज्यादातर चीर–फाड़ मध्यकालीन अस्पतालों में नमी भरे छोटे कमरों में, अथवा नाई की दुकान के पीछे बने विशिष्ट कमरों में जंग लगे चाकू व चमड़े की पट्टियों की रोक लगाकर ऑपरेशन करना– बहुत घातक, जिंदगी खतरे में डालने वाला काम था। 16वीं सदी के सर्जन अम्ब्रोइस ने कोयले पर गर्म, टांकने वाले लोहे से झुलसाने वाले अथवा सल्फ्यूरिक अम्ल के प्रयोग से रसायनिक रूप से गलाने वाले ट्यूमरों के बारे में बताया। जबकि त्वचा में छोटी सी खरोच लगाकर अगर इलाज किया जाता है तो यह शीघ्र ही घातक संक्रमण में बदलकर पक जाएगा और ट्यूमर को जरा सा भी छेड़ना भारी रक्तस्राव का कारण बन जाएगा।

18वीं सदी में जर्मनी के लॉरिन्ज हीस्टर नामक फिजीशियन ने एक बार बताया कि उनके क्लीनिक में स्तन का ऑपरेशन अपने आप आकर बलि देने का रिवाज जैसा था। "बहुत सी औरतें ऑपरेशन का सामना एक महान साहस के साथ कर सकती है तथा वे एक बार भी आह नहीं भरेगी। हालांकि कुछ औरतें इतना चीत्कार करती है कि सबसे साहसी सर्जन भी विचलित होकर ऑपरेशन को रोक देता है। ऑपरेशन करने लिए सर्जन को अविचलित रहना चाहिए तथा रोगियों के रोने–चिल्लाने से अपने आपको असहज नहीं होने देना चाहिए।"

आश्चर्य की बात नहीं है कि अधिकतर रोगी "अडिग रहने वाले शल्य–चिकित्सक से इलाज कराने के बजाए गैलन का रास्ता चुनते हैं तथा वे दैहिक दवाओं का प्रयोग अपने काले पित्त को शुद्ध करने के लिए करते हैं। हालांकि दवा वाला कैंसर के उपचार की एक लंबी सूची तैयार कर देता थाः सीसे का टिंचर, आर्सेनिक (जहरीले पौधे, संख्या) का सत्त, सुअर का दांत, लोमदी के फेफड़े, रेती से घिसा हुआ हाथी दांत, अरंडी का छिलका, जमीन पर मिलने वाला सफेद मूंगा, उल्टी कराने वाली दवा (Ipecac), सेना का पौधा तथा विरेचको की अल्प मात्रा। बेहद दर्द निवारक के रूप में अफीम व टिंचर का प्रयोग होता था। सत्रहवीं सदी में केकड़े की आंखों को कुचलकर बनाए गए पेस्ट की कीमत प्रति पाउंड पांच शिलिंग थी यह बहुत प्रसिद्ध था जैसे कि, लोहा–लोहे को काटता है। मलहम व औषधिक रूप में इस शताब्दी तक ऊट–पटांग चीजें आ गई थी– बकरी का मल, मेंढक, कौए के पैर, एक तरह का पेड (Dog Fennel), कछुए का यकृत, दैवीय हाथ का स्पर्श, मंत्रपूरित जल अथवा ट्यूमर को लेड की प्लेट से कुचलना।

गैलेन की सलाह के बावजूद अभी भी, यदा–कदा छोटा ट्यूमर काटकर निकाला जाता था। (यद्यपि गैलेन के बारे में बताया जाता है कि इन्होंने भी इस तरह की ऑपरेशन किए संभवतः ये सुंदरता बढ़ाने अथवा थोड़ा दर्द कम करने के लिए थे)। लेकिन ऑपरेशन से कैंसर को हटाने का विचार उपचारात्मक इलाज की भांति, केवल अति विपरीत परिस्थितियों में किया जाता था। जब दवाईयां व ऑपरेशन असफल हो गए तो डॉक्टरों ने केवल स्थापित तौर–तरीकों को अपनाया, ये तरीके गैलन की शिक्षाएं – शरीर से श्रृंखलाबद्ध तरीके से खून निकालना और शारीरिक द्रव को बाहर खींचने का रिवाज थीं। जैसे कि शरीर एक बड़ा स्पंज है जो ऊपर तक भरा है।

अध्याय तृतीय

हिन्दी अनुवाद के दौरान आने वाली समस्याएं

मानव मन के विचारों को व्यक्त करने के लिए भाषा सबसे महत्वपूर्ण साधन है। प्राचीनकाल से ही मानव अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए किसी न किसी माध्यम का प्रयोग करता रहा है। चाहे यह माध्यम शारीरिक चेष्टाएं, संकेत या चिन्ह ही क्यों न हों। उत्तरोत्तर मनुष्य प्रगति के पथ पर आगे बढ़ा और उसने अपने विचारों और भावों को व्यक्त करने के लिए भाषा का निर्माण करना प्रारंभ किया। किसी भी भाषा के निर्माण की प्रक्रिया दीर्घगामी होती हैं। पीढ़ियों के अंतराल के बाद कहीं जाकर किसी समाज में भाषा के रूप में स्थिरता आ पाती है। आज हम विश्व की जितनी भी भाषाएं देखते हैं वे सभी एक दिन या एक वर्ष का परिणाम नहीं हैं अपितु उनके निर्माण में सदियों का इतिहास छिपा होता है। उदाहरण के लिए हिंदी को ही लें आज हम जिस हिंदी भाषा को जानते हैं उसके पीछे एक हजार साल का इतिहास है। इसके अतिरिक्त अगर किसी भी भाषा के इतिहास को देखें तो हम थोड़े बहुत अंतर के साथ यही स्थितियां पांएगे।

अंग्रेजी के सुविख्यात आलोचक आई. ए. रिचर्डस ने भाषा और साहित्य के संबंधों का विवेचन करते हुए भाषा के दो मुख्य प्रयोग माने हैं– एक भाषा का वैज्ञानिक प्रयोग और दो, भाषा का भावात्मक प्रयोग[27]। डॉ मुखर्जी की इस पुस्तक में उपरोक्त दोनों प्रकारों का प्रयोग किया गया है। इसलिए यह पुस्तक विशुद्ध वैज्ञानिक पुस्तक तो है ही साथ ही इतिहास, राजनीति आदि विषयों का समावेश भी इसमें है। हालांकि, इन दोनों भाषा प्रकारों का प्रयोग भिन्न–भिन्न प्रयोजनों के लिए होता है लेकिन इस पुस्तक में सभी को मिलाकर कैंसर की तरफ मोड़ दिया है। उदाहरणतः– अमेरिका के 'नेशनल कैंसर इंस्टीट्यूट' की स्थापना की घोषणा कांग्रेस द्वारा होती है लेकिन द्वितीय विश्व–युद्ध के कारण अमेरिका का बजट रक्षा के लिए, एनसीआई की जमीन युद्ध पीड़ितों के लिए अधिग्रहित कर ली जाती है। कैंसर जिस तरह से इसके तुरंत पहले अपने पांव पसारता जा रहा था उस संबंध में कांग्रेस का यह कदम अप्रत्याशित था।

आधुनिक पश्चिमी भाषाओं में जो आधुनिक विज्ञान विकसित हुआ है

---

[27] 'अनुवाद विज्ञान की भूमिका', कृष्ण कुमार गोस्वामी, राजकमल प्रकाशन, 2008, पृ. 303

उसने प्रारंभ में ग्रीक अथवा लैटिन तकनीकि शब्दों को स्वीकार किया। उन शब्दों से ज़रूरत के अनुसार नए शब्द बनाए है। वैज्ञानिक एवं तकनीकि शब्द विकसित होते–होते अत्यंत विशिष्ट एवं स्पष्ट हो जाते हैं। परंतु इन शब्दों को हिंदी में अनूदित करना विशेष कठिनाई को उत्पन्न कर देता है। इसलिए या तो इनको लिप्यंतरित करके पाठकों को दिया जाए या फिर इनके कठिन समानार्थक शब्द हिंदी मे गढ़े जाए। मैनें अपने इस लघु शोध–प्रबंध में ऐसे शब्दो को कभी लिप्यंतरित किया है तो कभी अनूदित।

जैसे–

'फिजीशियन' (Physician) इसका हिंदी में अनुवाद होगा 'बाह्य शरीर की चिकित्सा करने वाला डॉक्टर' ('वैद्य' नहीं यह अब अप्रचलित है)। इतना लिखने की बजाए मैंने इसको केवल 'डॉक्टर' कहा है। अगर हम इसको 'बाह्य–चिकित्सक' कहें तो यह अधूरा लगेगा। क्योंकि फिजीशियन वह होता है जिसके पास इलाज करने का प्रमाणपत्र होता है और जो केवल बाह्य लक्षणों की चिकित्सा करता है। इसलिए विज्ञान में शब्दार्थ का स्पष्ट व विशिष्ट बोध होता है।

इसके अतिरिक्त 'सर्जन' का 'शल्य–चिकित्सक', 'हेमिटोलॉजिस्ट' का 'रक्त–विज्ञानी' शब्द चुना है। अन्य शब्दों जैसे कार 'शेयर' करना 'बीपर' आदि को ज्यों का ज्यों लिप्यंतरित कर दिया गया है। क्योंकि 'शेयर' के लिए 'हिस्सा लेना', 'भाग लेना' या 'अंश लेना' जैसे शब्द प्रचलित हैं। इनमें से किसी भी शब्द का प्रयोग कर लेने के बाद मुझे वाक्य को आकार देने में अत्यंत कठिनाई का सामना करना पड़ा। फलतः मजबूर होकर 'शेयर' ही लिखना पड़ा। 'फेलोशिप', 'मेडिकल ट्रेनिंग' जैसे शब्द हालांकि अंग्रेजी के हैं तथा इनका हिंदी अनुवाद क्रमशः 'अध्येतावृत्ति' तथा 'चिकित्सकीय प्रशिक्षण' किया जा सकता था परंतु मैंने शुद्ध तकनीकि एवं लोकप्रिय अनुवाद में से लोकप्रियता को स्थान दिया। क्योंकि 'फेलोशिप' ट्रेनिंग' आदि शब्द हिंदी भाषी समाज में अधिक प्रचलित हैं। ऐसे ही अन्य शब्दों में 'न्यूमोनिया', विटामिन B_{12} , टाइफाईड आदि

कई शब्दों की प्रचुरता है जिनको लिप्यंतरित करना पड़ा।

यूरोप के इटली, फ्रांस, जर्मनी, पोलैंड आदि में बड़े–बड़े आविष्कार हुए है। तथा इनके शिक्षण संस्थानों की संरचना तथा उनमें प्रयुक्त होने वाली भाषा (ग्रीक एवं लैटिन) उनकी अपनी विशेषता है। इनकी भारतीय समुदाय (विशेषकर हिंदी भाषी समुदाय) में समानता नहीं मिलती। हम लोगों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कुछ उपनिवेशी विशेषताओं को त्यागा तो कुछ को और भी तीव्रता से अपना लिया। लेखकीय वक्तव्य के अंत में 'Medical College' तथा 'Teaching Hospital' जैसे शब्दों से सामना करने के दौरान मैंने इनको लिप्यंतरित करके साथ ही कोष्ठक में इनका अर्थ दिया है। बिना स्पष्टीकरण के अंतर बताना संभव नहीं हो पा रहा था क्योंकि भारत में दोनों के लिए अलग–अलग शब्द नहीं है।

कई बीमारियां ऐसी हैं जिनका नाम उनके खोजकर्ता के नाम के आधार पर पड़ गया– जैसे 'हॉजकिंस' तथा 'अल्झाइमर'। इन बीमारियों में से हॉजकिंस का नाम उपरोक्त पुस्तक में दिया गया है जिसका अनुवाद 'लिम्फोमा' नाम से किया है। 'लिम्फोमा' सफेद रक्त कणिका की बीमारी है। इसका समतुल्य हिंदी में कई प्रयासों के बावजूद नहीं मिल सका।

भाषाई समस्या के अतिरिक्त पुस्तक में जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक सूचनाएं मिलती हैं उनका अतंरण वास्तविक समस्या खड़ी कर देता है। भाषा और संस्कृति का अटूट संबंध है। अब इन समाजों के बारें में आज की नई प्रौद्योगिकि के चलते काफी जानकारी हमें मिल जाती है; लेकिन ये सूचनाएं भाषिक रूपों के अंतरण में सहायक नहीं हो पाती। वास्तव में मानव अभिव्यक्ति के एक रूप में, भाषा में भौगोलिक, ऐतिहासिक और सामाजिक – सांस्कृतिक तत्वों का समावेश हो जाता है, जो एक भाषा से दूसरी भाषा में भिन्न होते हैं।

संस्कृति के संदर्भ में देश–विदेश की वेशभूषा का भी विशेष स्थान होता है। फलतः इसके अनुवाद में काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। हम

लोगों के यहाँ, विशेषकर हिंदी भाषी क्षेत्रों में साड़ी, धोती, लुंगी आदि वस्त्रों का संदर्भपरक अर्थ है।

जैसे –

> महिलाएं 'साड़ी' पहनती हैं तथा पुरुष लुंगी पहनते हैं, जबकि 'धोती' पुरुष और महिलाओं के लिए अलग–अलग किस्म की होती है। उसी तरह से जैसे पंजाबी वस्त्र 'सलवार–कुर्ता' अपनी संस्कृति को अपने भीतर समेटे रहता है। इसका अनुवाद किसी अन्य भाषा में नहीं हो सकता, क्योंकि अन्य भाषाओं में ऐसी वेशभूषा नहीं है।

इसी तरह से पुस्तक में 'स्मॉक' व 'जम्पसूट' मास्क तथा गाउन जैसे यूरोपीय परिधानों के लिए भारतीय संस्कृति में समानार्थी शब्द नहीं मिल सका, इसलिए दोनों को कोष्ठक में क्रमशः (पेन्टर आदि के द्वारा कपड़ों को रंगने से बचाने के लिए पहना जाने वाला कोट), (कैदी के पहनने का एक कपड़ा, जिसमें शर्ट व पजामा एक ही में सिले होते हैं, समझाया गया है।)

हालाँकि इसके लिए 'झंगोला' शब्द प्रयुक्त कर सकते हैं, लेकिन ऐसा करने से पेन्टर व कैदी के कपड़ों में अंतर नहीं हो सकेगा।

अतः संस्कृति को उद्घाटित करने वाले पाठ का अनुवाद करते हुए अनुवादक को सभी प्रकार के विवरणात्मक समतुल्य शब्द बनाने पड़ते हैं, जिससे कि पाठक उसको समझ सके।

डॉ. मुखर्जी ने कोशिका–विभाजन को समझाने के क्रम में लैटिन वैज्ञानिक रूडोल्फ विरचो के कथन को ज्यों का त्यों उतारा है। हालांकि अर्थ स्पष्ट है परंतु यहां पर केवल भावानुवाद से काम नहीं चल सकता। संपूर्ण कथन को मैंने इंटरनेट की सहायता से अंग्रेजी में फिर अंग्रेजी से हिंदी में किया है।

कथन है–

- 'Omnis cellula e cellula e cellula (Lattin)

- 'All cells come from cells' (English)

– सभी कोशिकाएं, कोशिकाएं बनाती हैं, फिर कोशिकाएं कोशिकाएं बनाती हैं' (हिंदी)

चूंकि यह प्रक्रिया कोशिका दर कोशिका चलती रहती है। इसलिए मैंने कॉमा लगाकर पुनः कथन को दोहरा दिया हैं इस वाक्य के अनुवाद में मुझे मेरे विषय से परिचय के कारण विशेष सहायता मिली।

चिकित्सा विज्ञान में 'Biopsy' तथा 'Postmortem' दोनों में ऊतकों व शारीरिक द्रवों का परीक्षण होता है, प्रथम में जीवित रहते तथा द्वितीय में मृत होने के बाद। Postmortem के लिए तो शब्द हिंदी में है 'शव परीक्षण' या 'मृत्योपरांत परीक्षण' जबकि बायोप्सी के लिए केवल 'बायोप्सी' है। इसलिए मैंने 'बायोप्सी' के लिए ऊतक एवं द्रव परीक्षण' शब्द समूह का प्रयोग किया है।

यह सत्य है कि वैज्ञानिक अनुवाद बहुत ही स्पष्ट व पूर्ण होना आवश्यक है। साथ ही साथ यह भी सत्य है कि सृजनात्मक साहित्य में अस्पष्टता कभी–कभी दुर्गुण नहीं होती। फलतः सृजनात्मक साहित्य में बहुत कुछ पाठक की कल्पना के लिए भी अनकहा छोड़ देते हैं। सृजनात्मक साहित्य की झलक डॉ. मुखर्जी की इस पुस्तक में दिखती है।

यह निर्विवादित है कि स्रोत–भाषा का पाठ पूरी तरह अनूदित नहीं हो सकता, इसलिए अनूदित पाठ मूल पाठ का स्थान नहीं ले पाता। हर पाठ में ऐसे कई भाषिक रूप होते हैं, जिनका अनुवाद संभव नहीं हो पाता। इसमें कई बार भाषा संबंधी कठिनाईयां सामने आती हैं और कई बार सामाजिक–सांस्कृतिक कठिनाईयां। मैंने अपने कोर्स–वर्क में यह पढ़ा है कि कैटफर्ड ने इसी संदर्भ में अनुवाद की सीमाओं के दो प्रकार बताए हैं – भावपरक सीमाएं और सामाजिक–सांस्कृतिक सीमाएँ। अन्य भाषाओं की तरह अंग्रेज़ी भाषा के मुहावरों से भी इसकी सामाजिक और सांस्कृतिक प्रौढ़ता का पता चलता है। निःसंदेह

मुहावरे और लोकोक्तियां भाषा को अधिक प्रभावशाली एवं व्यंजक बनाती हैं। उसी प्रकार की प्रभावशीलता व व्यंजना लाने की समस्या उनके अनुवाद में होती है।

उदाहरणतः–

पुस्तक में कार्ला नाम की महिला ल्यूकेमिया से पीड़ित है। इसके लिए कीमोथेरेपी करवाना आवश्यक है जबकि कीमोथेरेपी में कैंसर ग्रस्त कोशिकाओं के साथ सामान्य कोशिकाओं का दसवां हिस्सा समाप्त होना तय है। इस स्थिति में लेखक ने मुहावरेदार शैली में लिखा है–

'The only way out would be the way through (pg. 18)

इस शैली का एक अन्य उदाहरण आगे देखने को मिलता है। पृष्ठ संख्या बाईस पर जब एक कुककुट पालक के पिछवाड़े स्थित फफूंद (Chicken Farmer) के ढेर में 'स्ट्रेप्टोमाइसिन' नामक तत्कालीन रूप से चमत्कारिक एण्टीबॉयोटिक मिल जाती है तब लेखक ने 'टाईम पत्रिका में छपी खबर का शीर्षक लिखा हैः "The remedies are in our own backyard"

उपरोक्त दोनों वाक्यांश मुहावरेदार शैली में अभिव्यक्त किए गए हैं। इनका लक्ष्य भाषा में समतुल्य मुहावरा खोजकर प्रस्तुत किया गया है। इनमें भाव के स्तर पर लगभग समानता है।

दोनों का हिंदी रूपांतर क्रमशः इस प्रकार हैः

"दरिया से बाहर निकलने का रास्ता दरिया से होकर गुजरेगा।"

"बगल में छोरा, गांव भर में ढिंढोरा।"

पृष्ठ संख्या 18 पर लेखक ने विरचो के परिवार का विवरण देते हुए

'यिडिश' (Yeddish) शब्द का उल्लेख किया है। 'यिडिश' एक भाषा है जिसको मध्य व पूर्वी यूरोप के यहूदी लोग बोलते थे। इस भाषा के पीछे एक पूरा इतिहास है। इसके अलावा 'गुलग' 'कंस्ट्रेशन कैम्प' 'शेरिफ' आदि शब्दों का लक्ष्य भाषा की संस्कृति में समरूप मिलना कठिन है। फलतः ऐसे शब्दों का अनुवाद करने में विशेष कठिनाई का अनुभव हुआ। इन शब्दों को अनूदित करते समय शेरिफ के लिए 'पुलिस', कंस्ट्रेशन कैंप के लिए 'यातना शिविर' शब्दों को प्रयुक्त किया जबकि गुलग व 'यिडिश' शब्दों का भारतीय पर्याय मिल न सका। हालांकि 'यातना–शिविर' शब्द में वह असहायता, नस्लीय उन्माद, क्रूरतम अत्याचार आदि के भाव संपूर्णता में नहीं आ पाते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हुई वैज्ञानिक खोजों का पूर्णतः भारतीयकरण करना संभव नहीं है। दिन–प्रतिदिन देखने में यह आया है कि संसार की प्रमुख भाषाएं अब नए–नए आविष्कारों व सिद्धांतों को निर्धारित करके नए शब्दों को भी स्वीकार कर लेती है। इस पुस्तक में भी ऐसे शब्द खोजे जा सकते हैं।

उदाहरणतः–

(1) 'साबिन व साक' (पोलियो के टीके की खोज करने वाले वैज्ञानिकों के नाम)

(2) 'ई. कोली' (एक सूक्ष्मदर्शीय बैक्टीरिया)

(3) 'इंटरनिस्ट' (एक ऐसा चिकित्सक जो ऑपरेशन नहीं करता)

(4) क्रिएटिन

(5) विल्स सूत्र (Wills Formulla)

लेखक ने सॉबिन व साक के नाम का प्रयोग पोलियो वैक्सीन के लिए किया है। संभवतः यह नाम चिकित्साजगत में इस वैक्सीन का पर्याय होगा किंतु सामान्य जनमानस चाहे वह पश्चिम का हो या पूरब का इस बात से अनभिज्ञ ही होगा। इस प्रकार की शब्दावली को हिंदी भाषा द्वारा स्वीकार करके प्रचलन में लाना चाहिए। इससे एक तो हिंदी शब्द–भंडार समृद्ध होगा साथ ही हिंदी

बोलने वालों के ज्ञान में भी वृद्धि संभव हो सकेगी। इस तरह के अनुकूलन से इन शब्दों का उच्चारण अपनी भाषा के अनुकूल हो जाएगा फलतः कोई भी वैज्ञानिक तथ्य या सिद्धांत आसानी से चर्चित हो सकेगा।

विज्ञान के सिद्धांत, तथ्य, आविष्कार, प्रयोग आदि का विवरण विज्ञान विषय की परिसीमा में रहता है। इसलिए शुद्ध वैज्ञानिक ग्रंथों में अपनी तरफ से कुछ भी जोड़ने की जगह शेष नहीं रहती। इस तरह से स्रोत–भाषा की सामग्री को लक्ष्य–भाषा में प्रस्तुत करना एक सरल कार्य जान पड़ता है। लेकिन जब मैंने अनुवाद कार्य करना आरंभ किया तो साथ ही समस्याओं का आरंभ भी हो गया। क्योंकि इस पुस्तक में जहां–जहां शुद्ध वैज्ञानिक तथ्य हैं उनको इच्छानुकूल नए–नए पर्यायवाची शब्दों से अनूदित करने में असमर्थता का अनुभव हुआ। विभिन्न विषयों तथा कार्यक्षेत्रों की भाषा विशिष्ट प्रकार लिए होती है। अर्थात्, कार्यालयी, मेडिकल, वाणिज्य और साहित्यिक क्षेत्र की भाषाएं भिन्न–भिन्न होती हैं। उसी के आधार पर अनुवाद कर पाना, कई बार कठिन हो जाता है।

हमारी लक्ष्य भाषा के वैज्ञानिक कोशों में दिए गए पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करना पड़ा जिनकी संख्या अत्यल्प है या नहीं भी है।

उदाहरणतः–

1. प्लेटलेटस (बिंबाणु)
2. म्यूटेशन (परिवर्तन या उत्परिवर्तन)
3. फार्मालिन (शव पर लपेटा जाने वाला रसायन)
4 सपरेशन (मवादीकरण)
5. अमीनोप्टेरिन (कीमोथेरेपी में प्रयुक्त फोलिक एसिड का प्रतिरूप)
6. फोलिक एसिड
7. ल्यूकेमिया (सफेद रक्त कणिकाओं का कैंसर)

8. विटामिन

पहले अध्याय का शीर्षक है "A Suppuration of Blood" इसको अनूदित करने के लिए हिंदी में तीन शब्द हैं– मवादीकरण, पसीकरण, पीप बनना। हिंदी में अनुवाद करने के लिए इनमें से ऐसे शब्द को चुनना पड़ेगा जिसमें मवाद बनते रहने की प्रक्रिया में नैरंतर्य प्रदर्शित हो रहा हो। इसलिए किसी एक को चुनना व अन्य को निरस्त करने में काफी माथापच्ची करनी पड़ी। इसके अतिरिक्त शीर्षक के आरंभ में आया 'A' शब्द अंग्रेजी वाक्य–संरचना का हिस्सा है। यह वाक्य अर्थ को मजबूत करने के लिए आवश्यक है। इसके विपरीत हिंदी अनुवाद करते समय इसको भी शामिल कर लें तो अनुवाद होगा 'एक खून का मवादीकरण।' इस प्रकार का अनुवाद हास्यास्पद तो होगा ही साथ ही साथ अर्थ व्यक्त करने में भी अक्षम होगा। इसी तरह पुस्तक के शीर्षक को अनूदित करने के क्रम में 'इम्परर' शब्द के लिए 'राजा' 'महाराजा' 'बादशाह' आदि शब्दों में से एक के चयन की समस्या ने काफी समय ले लिया। 'बादशाह' शब्द इसलिए चुना गया क्योंकि इसमें निरंकुशता का बोध अन्यों की अपेक्षा अधिक होता है। जब 'बादशाह' शब्द को चुना तो 'All' शब्द की सार्थकता खत्म होती दिखी। क्योंकि बादशाह शब्द में 'सभी' निहित रहता है। अगर शरीर रूपी साम्राज्य में फैली बीमारियों के 'बादशाह' की बात हो रही है तो 'सभी' शब्द का कोई तुक नहीं लगता। इसलिए लक्ष्य भाषा में जहां समतुल्य शब्दों की कमी समस्या होती है वहीं अधिकता भी कभी–कभी समस्या बन जाती है।

लेखक ने अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग बहुत ही समझ–बूझकर किया है। इसलिए किसी भी शब्द को लेकर लापरवाही करना पूरे वाक्य का वज़न कम कर सकता है।

उदाहरणतः–

> एक स्थान पर मवाद का स्रोत जानने के लिए शव का परीक्षण किया जाता है तथा ऐसा कोई भी चिन्ह नहीं मिलता। इस चिन्ह के लिए डॉ.

मुखर्जी 'Stigmata' शब्द का प्रयोग करते हैं। कुछ पश्चिमी संस्कृति के लोगों के लिए यह शब्द केवल चिन्ह मात्र को ही प्रदर्शित नहीं करता बल्कि यह विशेष प्रकार का पवित्र निशान है। यह निशान किसी व्यक्ति के शरीर पर पाया जाता है तो माना जाता है कि यह ईसा मसीह के शरीर पर पाए जाने वाले घाव का निशान है जो कि उन्हें सूली पर चढ़ाते समय मिला था। निःसंदेह पुस्तक में जिस संदर्भ में यह प्रयुक्त हुआ है उसका पवित्रता से कोई सरोकार नहीं है। अपितु इसका विपरीत हो सकता हैं इस तरह के पौराणिक शब्दों के अनुवाद की समस्याएं इस पुस्तक में आती रहीं हैं।

इन पृष्ठों का अनुवाद करते समय एक अन्य समस्या संस्कृति सूचक शब्दों तथा समूहों को रूपांतरित करने की थी। पृष्ठ संख्या 23 पर कैंसर निवारक दवा संबंधी जटिलताओं तथा बनी हुई परिपाटी पर चलने वाले प्रयासों की आलोचना की गई है। इसके लिए वाक्य है :

'Cancer medicine was stuck in a rut....

भले ही लेखक का कर्मक्षेत्र पश्चिमी समाज व संस्कृति के बीच रहा हो लेकिन भारतीय मूल की छाप उनके लेखन में दिख़ाई देती है। भारत में कच्चे रास्ते व उन पर चलने वाली बैल गाड़ियां जिस प्रकार से नया रास्ता खोजने का प्रयास नहीं करती उसी तरह से कैंसर शोध की दशा हो रही थी। इस एक वाक्य को अनूदित करने के लिए कई–कई बार पूरे पैराग्राफ को समझकर अनुवाद किया :

''कैंसर चिकित्सा का पहिया बनी बनाई लीक में धंसा था'

इसमें 'पहिया' व 'धंसा' जैसे शब्द निरन्तरता व स्थाई, दोनों स्थितियों को दर्शाने वाले होने आवश्यक थे।

पश्चिम के विज्ञान के विकास में विभिन्न देशों का योगदान रहा है। इन देशों के वैज्ञानिकों ने अपने ग्रंथों में विज्ञान संबंधी भाषा के लिए ग्रीक व लैटिन

शब्दों को आधार बना लिया था। जिस प्रकार लैटिन से लिए गए शब्दों की भरमार है वहीं, अंग्रेजी के चिकित्सा संबंधी शब्द ग्रीक भाषा से भी व्युत्पन्न है।

जैसे 'एलोपैथी' शब्द ग्रीक के 'अलोस' (दूसरे) एवं 'पायोस' (पीड़ा) से बना माना जाता है। इसी तरह एक समस्या भाग एक के शीर्षक के अनुवाद को लेकर हुई। इस भाग का शीर्षक है :

"OF BLACKE CHOLOR, WITHOUT BOYLING"

इस वाक्य का अनुवाद करने के लिए मैंने सिद्धार्थ मुखर्जी से संपर्क साधने का भी प्रयास किया। हालांकि इंटरनेट पर इसका आशय तो पता चला लेकिन अनुवाद की समस्या जस की तस बनी रही। अंततः संपूर्ण भाग का अन्वेषण करने पर ज्ञात हुआ कि यह वाक्यांश ग्रीक चिकित्सा–विज्ञान का शब्द है जिसे गैलेन ने (160 A.D.में) लिखा था। इन्होंने शरीर के चार द्रवों के बारे में चर्चा की थी। इन सभी द्रवों का विशिष्ट रंग था। इनमें से एक काले रंग का था। इनकी मात्रा शरीर में असमान लेकिन संतुलित होती है। जब काले रंग का पित्त असंतुलित होता है तो कई विकारों का जन्न करता है।

इस वाक्यांश का अनुवाद इस प्रकार से हैं :

"काले पित्त का असंतुलित होना"

विदेशों में प्रायः गंभीर अनुवादक किसी विदेशी भाषा की कृतियों का अनुवाद करने के लिए मूल भाषा सीखने में वर्षों लगा देते हैं। इसके दूसरी तरफ हिंदी में विदेशी साहित्य के अनुवाद का काम अपेक्षाकृत आसानी से होता रहा है। हिंदी में अनूदित विदेशी साहित्य का बहुत बड़ा भाग ऐसा है जिनके अनुवादकों को उस भाषा, संस्कृति और परिवेश की कोई जानकारी नहीं है। गार्गी गुप्त ने लिखा है "दुर्भाग्य से डेढ़ सौ वर्षों की दासता के फलस्वरूप हमारी चिंतन सारणियां इतनी सीमित संकुचित और दिशावद्ध हो गई हैं कि उनसे उबर पाना सहज नहीं है। हम सब अंग्रेजी और अंग्रेजियत के चश्मे लगाए

घूमते हैं– किसी के शीशे हल्के रंगीन है, किसी के गहरे, बस यही अंतर है।''[28]

दो भारतीय भाषाओं के बीच के अर्थ--विनिमय के लिए शाब्दिक कठिनाई कम होती है। यही बात किसी गैर भारतीय भाषा के बारे में ठीक नहीं है बल्कि उसमें ये कठिनाई और अधिक बढ़ जाती है। ऐसा इसलिए कि स्थान विशेष की भाषा वहां की संस्कृति की वाहक होती है तथा उसके अपने कुछ ख़ास शब्द और उनकी संरचना होती है।अनुवादक के सामने मूलपाठ के पात्रों द्वारा उनकी अपनी क्षेत्र विशेष की वास्तु–संरचना को भारतीय संदर्भ में समझाना अत्यंत कठिन होता है। क्योंकि भारत में भौगोलिक, आर्थिक कारणों से इस तरह की संरचना सहज–सुलभ नहीं हो पाती, जिसको स्रोत–भाषा के समकक्ष रखा जाए। अतः वास्तु–शास्त्र के समकक्ष शब्दों का लक्ष्य–भाषा में अनुवाद नहीं हो पाता है। फलतः उसका लिप्यंतरण करना मजबूरीवश करना पड़ता है।

इसका एक विकल्प यह भी हो सकता है कि आप उस सामग्री का चित्र लक्ष्य–भाषा में उपलब्ध कराएं।

जैसे –

पृष्ठ तीस पर स्रोत–भाषा का वाक्य है –

Dinner , in the dark – wood-paneled rooms of the house.

इसका अनुवाद लक्ष्य–भाषा में किया गया है –

'काली लकड़ी से घिरे कमरों में वे रात का खाना...'

अंग्रेजी भाषा में पुनरूक्त शब्दों का प्रयोग देखने को नहीं मिलता है जबकि हिंदी में इस तरह के शब्दों का प्रयोग काफी महत्वपूर्ण होता है ऐसा इसलिए क्योंकि इन शब्दों के प्रयोग से अभिव्यक्ति में और अधिक दृढ़ता आ जाती है। इसलिए हिंदी में अनूदित करते समय पुनरूकत शब्दों के प्रयोग की

---

[28] गार्गी गुप्त, अनुवाद, अंक 100–101 जुलाई–दिसंबर, 1999, पृ. 26

दरकार रहती है:

Lying - पड़े–पड़े

Slightest - छोटी–से–छोटी।

अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद के दौरान अंग्रेजी के कुछ ऐसे शब्दों से सामना करना पड़ता है जो ध्वन्यात्मकता लिए होते हैं। इनके अनुवाद करने में कठिनाई यह होती है कि इस तरह के शब्द हिंदी में विशेष चीजों से संबंधित होते हैं। इनको किसी और स्थिति में नहीं जोड़ा जा सकता

उदाहरणतः –

'The normalcy of blood almost restored a flickering momentary normalcy to the childhood.'

जैसे–

यहां पर 'Flickering' शब्द को आशा की किरण के लिए प्रयोग करना होगा इसलिए 'टिमटिमाना' शब्द उपयुक्त रहेंगा।

इसके अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा में समवर्गीय संयुक्त शब्दों का प्रयोग नहीं होता। जबकि हिंदी में बिना इसके प्रयोग के भाव में स्पष्टता नहीं आ पाती है।

जैसे –

Doctor fumbled about for some explanation.

इस वाक्य का अनुवाद 'डॉक्टर ने कुछ समझने का प्रयास किया' किया है। परंतु 'डॉक्टर कुछ समझ नहीं पा रहा था' या 'डॉक्टर समझने के लिए हाथ–पांव मार रहा था' जैसे वाक्यों में बीमारी की भयावहता व जटिलता भी प्रदर्शित हो रही है जबकि पहले अनुवाद में केवल डॉक्टर की असहायता दिखती

है। इस तरह से 'हाथ–पांव' जैसे समवर्गीय संयुक्त शब्दों का प्रयोग सोच–समझकर करना पड़ता है।

अंग्रेजी में प्रतिध्वन्यात्मक द्वित्व शब्दों का प्रयोग नहीं होता। हिंदी में ऐसे शब्दों का प्रयोग ठीक स्थान पर करना जटिलतापूर्ण कार्य होता है।

जैसे–

An antique forger में 'Forger' का अनुवाद 'हेरा–फेरी' करना हिंदी भाषी समाज के लिए अधिक सुग्राह्य होगा।

किसी भी विदेशी भाषा से भारतीय भाषा में अनुवाद करने के दौरान भारतीय संदर्भ से संबंधित शब्दावली का होना अत्यंत आवश्यक है। इसके बगैर या इसका विकल्प प्रयुक्त करने से समस्या आती है।

जैसे– 'Sheriffs office

इस शब्द के समतुल्य भारतीय समाज में कोई संस्था ही नहीं है फलतः कोई व्यंजना करने वाला शब्द भी अप्राप्य है। अमेरिका में यह एक चुना हुआ अधिकारी होता है जिसकी जिम्मेदारी शांति–व्यवस्था बनाए रखना होता है जबकि यूरोप में (इंग्लैंड व वेल्स में) यह राजा का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है। भारत में ऐसी स्थिति नहीं है।

इसके अतिरिक्त अंग्रेजी बोलने वालों की भौगोलिक, विविधताओं के कारण वनस्पतियों व पेड़ पौधों का अनुवाद करना काफी कठिन होता है। कई बार तो ये वनस्पतियां हमारे यहां पाई नहीं जाती है जो कि जलवायुविक कारणों की वजह से है।

पृष्ठ 49 पर ऐसा उदाहरण देख सकते हैं :

i) Dog Fennel - एक तरह का पेड़

ii) Sena - एक पौधा

iii) Ipecac -उल्टी कराने के पौधा–निर्मित दवाई।

हिंदी अनुवाद के दौरान अंग्रेजी भाषा के समतुल्य अरबी–फारसी, उर्दू अथवा हिंदी के अप्रचलित शब्दों का प्रयोग आवश्यक लगने लगता है। अगर हम ये शब्द प्रयोग नहीं करेंगे तो मूल के पाठ के अर्थ को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त नहीं कर सकेंगे। क्योंकि ये शब्द लोक में प्रचलित शब्द हैं तथा जनसामान्य इनको आसानी से समझ सकता है। इसलिए अनुवाद करते समय ऐसे शब्दों पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता महसूस होती है, ताकि कोई शब्द छुटने न पाए –

Die -	मौत (मृत्यु, नहीं)
Appliance -	औज़ार (हथियार, नहीं)
Bone -	हड्डी (अस्थि, नहीं)
Hospital	अस्पताल (चिकित्सालय, नहीं)
Treatment	इलाज (चिकित्सा, नहीं)
Patient	मरीज़ (रोगी, नहीं)
Ourselves	खुद को (अपने आप को, नहीं)
Despite	के बावजूद, के बजाय (के स्थान पर, नहीं)
Insatible	आदमख़ोर (न तृप्त होने वाला, नहीं)
Road-	सड़क (मार्ग, नहीं)
Mind -	दिमाग

Fiver- बुखार (ज्वर, नहीं)

Breast Cancer- स्तन कैंसर (चूचुक कैंसर नहीं)

इस पुस्तक के अनुवाद के दौरान शल्य–चिकित्सा की पद्धतियों का अनुवाद करने में बहुत अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। 20वीं व 21वीं सदी में ऑपरेशन की पद्धतियां विकसित हुई है उनको हिंदी में अनूदित करना बड़ा ही दुष्कर है। पहले की शल्य –चिकित्सा चमड़े की पट्टियों से बांधकर लेप लगाकर की जाती थी जो कि अब 'एनस्थीसिया', 'कीमोथेरेपी', व 'कोल्ड–नाइफ सर्जरी के द्वारा प्रतिस्थापित कर दी गई है। इस तरह की शल्य–चिकित्सा में कोल्ड–नाइफ सर्जरी में 'कोल्ड–नाइफ' का आशय किसी एक औजार से न होकर पूरी प्रक्रिया से होता है। यह स्त्री के मूत्राशय के अंतिम भाग (सर्विक्स) के ऊतकों का परीक्षण है। यह सर्वाइकल कैंसर की पुष्टि के लिए आवश्यक जांच है।

स्रोत–भाषा की इस पुस्तक में साहित्य के भी दृष्टांत यदा–कदा मिलते रहे हैं। प्रसिद्ध लेखकों शेक्सपीयर जासूसी उपन्यासों के महान लेखक आर्थर कानन डायल, बॉयरन आदि की पंक्तियां भी मिलती रही है। इनका अनुवाद करने में विशेष समस्या नहीं हुई। काव्यपंक्तियां तो लगभग प्रत्येक नए अध्याय के आरंभ में दी गई है। इस पुस्तक में लेखक ने अंग्रेज़ी के लंबे–लंबे वाक्यों का प्रयोग किया है। इस कारण से भाव तो समझ में आ जाता है, लेकिन जब उसका अनुवाद हिंदी भाषा में करते हैं तो मूल पाठ जैसी स्वाभाविकता नहीं आ पाती है।

उदाहरणतः–

In 1862, Edwin Smith – an unusual character : part scholar and part luckster, an antique forger and selfmade Egyptologist – bought (or, some say, stole) a fifteen – foot – long papyrus from an antiques seller in Luxor in Egypt.

हिंदी अनुवाद –

1862 में एडविन स्मिथ ने मिस्र के लक्सर में एक प्राचीन वस्तुओं के विक्रेता से एक पंद्रह फुट लंबा भोज–पत्र खरीदा। यह आदमी कुछ और ही था – थोड़ा सा विद्वान, थोड़ा सा फेरी वाला, प्राचीन वस्तुओं की हेरा–फेरी करने वाला।

उपरोक्त उदाहरण में हम देख सकते हैं कि वाक्य की संरचना में छेड़छाड़ करनी पड़ी साथ ही नए वाक्यों का गठन भी इस तरह से करना पड़ा कि स्रोत–भाषा का भाव सुरक्षित रहे। इस उदाहरण में अंग्रेज़ी के 'part' केवल 'थोड़ा' शब्द से काम नहीं चल पाया। यह 'थोड़ा' शब्द किसी भी व्यवसाय में अपरिपक्वता की अवस्था को नहीं दर्शा पाता है। इसलिए अलग से स्रोत–भाषा के 'part' के लिए लक्ष्य–भाषा में अपनी तरफ से 'सा' लगाना पड़ा। इस तरह के कई उदाहरणों को डॉ. मुखर्जी की इस पुस्तक का अनुवाद करते समय देखा जा सकता है।

सारांशतः मूल–पाठ के अनुवाद के दौरान मैंने कई छोटी–बड़ी उपरोक्त समस्याओं का सामना किया। अंग्रेजी–हिंदी भाषाओं की भाषिक और सामाजिक सांस्कृतिक भिन्नताओं, विज्ञान की प्रगति के कारण नई–नई खोजों के लिए शब्द ढूंढने में समस्याओं का आना स्वाभाविक भी था। जिस तरह से किसी भी साहित्यिक कृति का अनुवाद कभी अपने आप में पूर्ण नहीं हो सकता उसी

प्रकार ऐसी पुस्तकों का अनुवाद, जिनमें साहित्य के साथ–साथ अन्य धाराएं भी समाहित हों, भी पूर्ण नहीं हो पाता। इस असमर्थता का आभास सिद्धांत और प्रयोग सीखने–सिखाने से बढ़कर अनूदित कृति को सृजनात्मक रूप देते समय होता है। ऐसा इसलिए क्योंकि अनुवादक द्वारा अनूदित मूल कृति की गहराई तक पहुंचना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। लेकिन दोनों भाषाओं के बीच आने वाली समस्याओं का विश्लेषण करने से इनके बीच की भाषिक व सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक विशेषताओं की जानकारी मिल सकी। इन सबसे निश्चित तौर पर मेरे व्यक्तिगत ज्ञान में बढ़ोत्तरी हुई। वैसे भी अनुवाद कर्म दो भाषाओं की भाषिक और सामाजिक–सांस्कृतिक विशेषताओं को आपस में जोड़ता है और अनुवाद की सीमाओं के साथ इसकी आवश्यकता और विशिष्टता को भी रेखांकित करता है।

अध्याय–चार

उपसंहार

मूलतः अंग्रेजी में लिखित 'इम्परर ऑफ ऑल मलाडाईज कैंसर अ बॉयोग्राफी' डा. सिद्धार्थ मुखर्जी की पहली पुस्तक है। इस रचना को पढ़कर स्पष्ट हो जाता है कि लेखक ने एक चिकित्सक होने के नाते कैंसर जैसी बीमारी का संवेदनशीलता व सूक्ष्मता साथ चित्रण किया है। लेखक की शिक्षा–दीक्षा अंग्रेज़ियत के माहौल में हुई है। इसलिए भी इस रचना के सभी पात्र व घटनाएं पश्चिम से संबंधित है। एक जगह पर लेखक ने भारतीय परिवेश का उदाहरण दिया है तथा अन्य जगह पर एक भारतीय नाम का। ये भारतीय येला सुब्बाराव हैं जो सिडनी फार्बर के सहयोगी रहे थे। पश्चिमी परिवेश में ढली इस कृति की भाषा क्लिष्ट अंग्रेजी है। इसमें वह अंग्रेजी है जिसकी आज के समय में उतनी व्यापकता नहीं है जितनी सामान्य अंग्रेजी की है। भले ही आज के पढ़े–लिखे भारतीयों की भाषा के रूप में अंग्रेजी दिनों–दिन समृद्ध हो रही हो लेकिन इस तरह की अंग्रेजी कम–से–कम मुझे तो दुर्लभ ही जान पड़ती है।

इस पुस्तक की घटनाएं तो सच्ची हैं लेकिन पात्रों के नाम कहीं–कहीं पर काल्पनिक हैं। लेखक ने लेखकीय–वक्तव्य के अंतर्गत इस चीज को स्पष्ट कर दिया है। निःसंदेह रूप से इनकी इस रचना का नायक कैंसर है जिसको केंद्र में रखकर यह रचना निर्मित की गई है।

पुस्तक की शुरुआत कार्ला नामक स्त्री के संदेश से होती है। यह डॉ. मुखर्जी के बीपर पर आता है। इसके बाद 'वैयक्तिक बीमारी' नामक अध्याय में वे कैंसर के प्राचीनतम प्रमाण की चर्चा शुरू करते हैं और बताते हैं कि किस तरह से मिस्र के इम्होटेप (2650 B.C.) के वर्णन में स्तन कैंसर के प्रमाण है। ग्रंथ का लिप्यंतरण करने वाली लिपि 2500 B.C. के आस–पास थी। इस लिप्यंतरित ग्रंथ में जादू टोने से बीमारियों का पता करने के बजाए शारीरिक संरचना में परिवर्तन व लक्षणों से ज्ञात करने की विधियां हैं।

इसके बाद डॉ. मुखर्जी ने 440 B.C. के अटोसा के उदाहरण को उठाया है तथा बताया है कि किस तरह से अटोसा के स्तन की एक गांठ ने जंगी जहाजों के बेड़े तैयार करा दिए। यही वह पहला उदाहरण है जहां से कैंसर को

सर्वस्वीकृति मिली जबकि इससे पहले यह एक छिपाने वाली बीमारी समझी जाती थी। अटोसा का यह प्रकरण हेरोडोट्स के ग्रंथ 'हिस्ट्रीज' से लिया गया है।

डॉ. सिद्धार्थ मुखर्जी की इस कृति का अनुवाद करते समय मुझे विभिन्न प्रकार के अनुभवों से सामना करना पड़ा। कठिनाईयों का सामना करने के बाद मेरी भाषिक –सांस्कृतिक समझ में इज़ाफा ही हुआ। पेरू–चिली के अटाकामा मरूस्थल से लेकर कई सामाजिक जीवन–शैलियों से साक्षात्कार हुआ। पुस्तक के शीर्षक में कैंसर की शक्ति, निरंकुशता, भयावहता का निदर्शन होता है। इस उपन्यास के शीर्षक का अनुवाद करते समय मेरे सामने एकाधिक विकल्प थे। इस कारण कई बार भ्रम की स्थिति उत्पन्न हुई जिसकी विस्त्रत चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

पुस्तक में डॉ. मुखर्जी ने लंबे–लंबे वाक्यों तथा उनके अंदर ही उपवाक्यों का प्रयोग किया है। जिनमें विशेषणों व वाक्यों तथा उनके अंदर ही उपवाक्यों का प्रयोग किया है। जिनमें विशेषणों व वाक्यांशों की बहुलता है। 'द गार्जियन' ने इस किताब को मेग्नीफिशेन्ट स्टडी ऑफ कैंसर कहा है।

पुस्तक के प्रथम पचास पृष्ठों में चार शीर्षक है। पहला शीर्षक है 'खून का मवादीकरण', दूसरा 'गुलोटिन से ज्यादा आदमखोर दैत्य', 'फार्बर का कवच' तीसरा, चौथा शीर्षक वैयक्तिक महामारी तथा पांचवां 'बोझ' नाम से अनूदित है। इस पुस्तक में लेखक की राजनीति, अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र से भी निकटता दिखाई पड़ती है। पुस्तक के अतिरिक्त भी डॉ. मुखर्जी के अन्य लेखों में इस प्रवृत्ति का निदर्शन होता है। इनका एक लेख न्यूजवीक पत्रिका में अक्टूबर 2012 में छपा था जब एप्पल कंपनी के संस्थापक स्टीव जॉब्स की मृत्यु कैंसर के कारण हुई। इस लेख का सारांश यह बताता है कि किस तरह से अमेरिका जैसा देश युद्ध तथा अन्य गौण चीजों पर पैसा पानी की तरह बहाता रहा जबकि यही पैसा कैंसर रिसर्च में लगाया जाता तो शायद स्टीव जॉब्स को बचाया जा सकता था। लेखक ने मध्य एशिया के सैन्य खर्चे व कैंसर रिसर्च पर

होने वाले खर्चों के आंकड़े भी प्रस्तुत किए है। इस पुस्तक में कैंसर की आर्थिक व्याख्या के साथ–साथ आधुनिक जीवन शैली के खतरनाक पहलुओं की ओर भी इशारा किया है।

डॉ. मुखर्जी ने जिस तरह से अटाकामा मरूस्थल की चिरिबाया जनजाति का विवरण तथा वहां की भौगोलिक स्थितियों का वर्णन किया है ऐसा लगता है कि लेखक एक पुरातत्वविद् व भूगोलवेत्ता है। इन्होंने चिरिबाया जनजाति के ममीकृत अवशेषों में हड्डी के कैंसर का प्रमाण अपने मित्र की मदद से पाया जिसको ऑस्टियोसरकोमा' कहा गया।

मूल पाठ के पूर्ण अर्थ को अनूदित पाठ में अंतरित करने की यथासंभव कोशिश के बावजूद किसी भी कृति का लक्ष्य भाषा में संपूर्ण अनुवाद करना कठिन हो सकता है। इसका कारण है मूलभाषा से जुड़ी कठिनाईयां। चूंकि इन समस्याओं से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता इसलिए इन दृश्य–अदृश्य कठिनाईयों के कारण अनुवाद में कभी अति विस्तार व कभी संकुचन आया है। अनुवादक का काम अ़पनी कार्य क्षमता, सामर्थ्य और योग्यता का प्रदर्शन करना नहीं अपितु मूल पाठ से लक्ष्य–भाषा के पाठक का परिचय कराना है। पाठक और मूल लेखक को मिलाने का काम और इस मिलन में यथासंभव अनुपस्थित रहने का दायित्व भी अनुवादक का है, उन्हें अपनी शर्तों पर मिलाने का नहीं। अगर इसका ध्यान रखा जाता है तो लक्ष्य भाषा के पाठक या श्रोता के मन में अनूदित रचना को पढ़कर या सुनकर वही भाव संप्रेषित होगा जो मूल भाषा के पाठक या श्रोता के मन में संप्रेषित होता है।

स्रोत व लक्ष्य–भाषा की यह समतुल्यता अनुवाद प्रक्रिया का प्राणतत्व है। इस दृष्टि से स्रोत–भाषा में प्रस्तुत रचना और लक्ष्य–भाषा में प्रस्तावित रचना के मध्य निकटतम, सहज, समतुल्यता की स्थापना ही अनुवाद है। यह समतुल्यता, भाव, अर्थ अथवा कथ्य में तो होनी ही चाहिए। यदि भाषा एवं शैली में भी इसका यथासंभव निर्वाह किया जा सके तो अनुवाद और भी उत्तम होगा। सफल अनुवादक वही है जो मूल लेखक की भाव भूमि में पहुंचकर उसके हृदयगत

संप्रेष्य को स्रोत सामग्री जैसी समग्रता और उदत्तता के साथ लक्ष्य–भाषा में प्रस्तुत कर सके।

डॉ. मुखर्जी की वाक्य–शैली की विशेषताएं लक्ष्य–भाषा हिंदी में लाने के लिए काफी मशक्कत करनी पड़ी है। पुस्तक में लगभग प्रत्येक अध्याय के प्रारंभ में काव्य–पंक्तियों को अनूदित करने के दौरान काव्यानुवाद जैसी कठिन विधा से भी सामना करने का अवसर मिला। इनको अनूदित करते समय संदर्भानुसार अर्थ लिया गया हैं इस तरह की वैज्ञानिक कृति, जिसमें सर्जनात्मक की भी पर्याप्त जगह है, के अनुवाद का यह मेरा प्रथम प्रयास था। जिसको मैंने अपने मित्रों व गुरूजनों की सहायता से पूरा करने की गंभीर कोशिश की है। फिर भी मेरी व्यक्तिगत व अनुवाद की सीमाओं की चलते कुछ त्रुटियां शेष रह सकती हैं। इन त्रुटियों को मैं स्वीकार करता हूं तथा अवसर मिलते ही सुधारने का प्रयत्न करूंगा।

ग्रंथानुक्रमणिका

आधार ग्रंथ–

Mukherjee, Siddhartha (2011), *THE EMPEROR OF ALL MALADIES: A BIOGRAPHY OF CANCER,* London: Fourth Estate.

कोष ग्रंथ–

- बाहरी हरदेवः हिंदी इंग्लिश डिक्शनरी, राजपाल प्रकाशन, 2011
- कामिल बुल्के फादर, अंग्रेजी, हिंदी कोश, एस. चंद एण्ड कंपनी, नई दिल्ली 2003
- बाहरी, हरदेव, अंग्रेजी–अंग्रेजी हिंदी शब्द कोश, ज्ञानमंडल वाराणसी, 1995
- Sahani Advanced Dictionary Sahani Brother's , Agra 2004
- The New Penguin Encyclopedia, 2003
- Thesarus- Haper Collins Publishers, 1998
- Bhargava Dictionary: English- Hindi, Bhargava Bhushan Press, Varansi, 2003

Online Dictionary

- शब्दकोश www.shabdkosh.com
- हिंखोज– http://dict.hinkhoj.com
- ऑक्सफोड http://oald8.oxfordlearnersdictionaries.com
- Medical Dictionary- The Free dictionary (http://medical-dictionary.thefreedictionary.com)

संदर्भ ग्रंथ

नगेंद्र (सं.), अनुवाद विज्ञान : सिद्धांत और अनुप्रयोग, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1993

तिवारी, भोलानाथ : 'अनुवाद–कलां', शब्दकार प्रकाशन, 159, गुरू अंगद नगर (वेस्ट), दिल्ली, 1997

सिन्हा, रमण प्रसादः अनुवाद और रचना का उत्तर जीवन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002

गुप्ता, विभा : अनुवाद के भाषिक पक्ष, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2008

गोस्वामी,कृष्ण कुमारः अनुवाद विज्ञान की भूमिका, राजकमल प्रकाशन. 2007

तिवारी, भोलानाथ : अनुवाद विज्ञान, 'शब्दकार प्रकाशन, गली डकौतान, तुर्कमान गेट, दिल्ली– 6, प्रथम संस्करण 1972

डॉ. अय्यर, एन. ई. विश्वनाथः अनुवाद कला, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 2001

शर्मा, सोहनः अनुवादः सोच और संस्कार, सन्मति प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण, 1984

Mukherjee, Siddartha; "I am Sorry, Steve: We could Have Saved You", *News Week,* 24 Sep. 2012.

Gargesh, Ravinder and Krishna Kr. Goswami (eds.), *Translation and Interpreting: Reader and Workbook* (अनुवाद एवं भाषांतरणः पाठ एवं अभ्यास) Delhi: Orient Longman, 2007

Habermas, Jurgen, *Communication and the Evolution of Society*, Translated by Thomas McCarthy, New York: Beacon Press, 1979

Heidegger, Martin, *Poetry, Language and Thought*, Translated by Albert Hofstadter, New York: Harper Colophon Books, 1971

Hirsch, E. D., *Validity in Interpretation*, Conn: New Haven, 1976

Holub, Robert C., *Reception Theory*, London and New York: Methuen, 1984

Jameson, Fredric., *The Prison-House of Language: A Critical Account of Structuralism and Russian Formalism*, New Jersey: Princeton University Press, 1972

Lenin, V. I., *On Culture and Cultural Revolution*, Moscow: Progress Publishers, 1970

Lenin, V. I., *On Literature and Art,* Moscow: Progress Publishers, 1970

Lukacs, George, *The Historical Novel*, Translated by Hannah and Stanley Mitchell, Boston: Beacon Press, 1963

Lukacs, George, *History and Class Consciousness: Studies in Marxist Dialectics*, Translated by Rodney Livingstone, London: Merlin Press, 1971

Macherey, Pirre, *A Theory of Literary Production*, London: Routledge & Kegan Paul, 1978

Mills, C. Wright, *The Sociological Imagination*, London: Oxford University Press, 1959

Wolff, Janet, *The Social Production of Art*, London: Macmillan Press Ltd., 1981

Wolff, Janet, *Aesthetics and the Sociology of Art,* London: George Allen & Unwin, 1983

शोध ग्रंथ :

अंबरीश त्रिपाठी : बिटविन टू वर्ल्डस का हिंदी अनुवाद और इसका बौद्धिक विश्लेषण, लघु शोध–प्रबंध भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, 2008

जय कौशल : वी. एस. नायपॉल कृत उपन्यास, 'हॉफ ए लाइफ' का हिंदी अनुवाद लघु शोध–प्रबंध, भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, 2006

वेब संदर्भ–

- www.proz.com
- www.cancer.org
- en.wikipedia.org/wiki/rudolf-virchow
- en.wikipedia.org/wiki/siddhartha-Mukherjee
- www.gaurdian.co.uk
- News week, 24 Sep. 2012.